दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

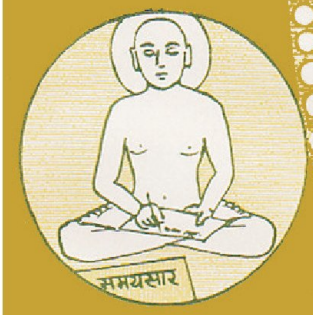

प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमबद्ध ही है, क्रमबद्ध के निर्णय में अकर्तास्वभाव अर्थात् ज्ञातास्वभाव के निर्णय का अनंत पुरुषार्थ है।
— पूज्य स्वामीजी

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३४ : अंक ११ [४०७] मई, १९७९

आत्मधर्म [४०७]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा कन्नड़ — इन चार भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल
कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)
शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे
मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

कहाँ / क्या

१ ज्ञानी जीव निवार भरम तम
२ ध्रुव में से धर्म लो
३ संपादकीय : क्रमबद्धपर्याय
४ क्षायकादिभावस्थान भी जीव नहीं
[नियमसार प्रवचन]
५ नृत्य-कुतूहल तत्त्व को मरि-पचि देखो धाय
[समयसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ पाठकों के पत्र

भाई ! तेरा आत्मा ज्ञायक है.... चैतन्यचमत्कारी हीरा है। तेरा आत्मा प्रतिसमय ज्ञाता-दृष्टापने की क्रमबद्धपर्यायरूप से उत्पन्न होकर जाने—ऐसा ही तेरा स्वभाव है; किन्हीं पर-पदार्थों की अवस्था को बदलने का स्वभाव नहीं है। इसलिये पर की कर्त्ताबुद्धि छोड़ और अपने ज्ञायकस्वभाव सन्मुख होकर ज्ञायकरूप ही रह।

— पूज्य स्वामीजी

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३४ [४०७] अंक : ११

ज्ञानी जीव निवार भरम तम, वस्तुस्वरूप विचारत ऐसे॥टेक॥
सुत तिय बंधु धनादि प्रगट पर, ये मुझसे हैं भिन्न प्रदेशे।
इनकी परणति है इन आश्रित, जो जिन भाव परनवै वैसे॥
ज्ञानी जीव निवार० ॥१॥

देह अचेतन, चेतन मैं, इन परणति होय एकसी कैसे।
पूरन, गलन, स्वभाव धरै तन, मैं अज अचल अमल नभ जैसे॥
ज्ञानी जीव निवार० ॥२॥

पर-परिनमन न इष्ट अनिष्ट न, वृथा राग-रुख द्वंद भये से।
नसे ज्ञान निज फंसै बंध में, मुक्ति होय सम भाव लये से॥
ज्ञानी जीव निवार० ॥३॥

विषयचाह दवदाह नशै नहिं, बिन निज सुधा-सिंधु में पैठे।
अब जिन बैन सुने श्रवनन तैं, मिटे विभाव करूँ विधि तैसे॥
ज्ञानी जीव निवार० ॥४॥

ऐसो अवसर कठिन पाय अब, निज हित हेत विलंब करे से।
पछतायौ बहु होय सयाने, चेतन 'दौल' छुटो भव भय से॥
ज्ञानी जीव निवार० ॥५॥

बीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से बीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

ध्रुव में से धर्म लो

धर्म की बात सुनकर जीवों को विचार आता है कि—धर्म लें कहाँ से ?—शरीर की क्रिया में से धर्म आता होगा ? पुण्य में से आता होगा ? या किसी स्थान विशेष में से मिलता होगा ?

आचार्यदेव समझाते हैं कि—'ध्रुव में से धर्म लो'।—तुम्हारा ध्रुव आत्मा ही धर्म की खान है, वही धर्म का स्थान है, उसी में से तुम्हारा धर्म आता है। इसके अतिरिक्त शरीर की क्रिया में से, राग में से, बाह्य स्थानों में से या अन्यत्र कहीं से धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती।

धर्म जहाँ होगा वहीं से आयेगा या कहीं बाहर से ? भाई ! तुम्हारा धर्म तुम्हारे आत्मस्वभाव में ही है, तुम से बाहर कहीं तुम्हारा धर्म नहीं है। इसलिये बाहर से धर्म नहीं आयेगा। अपने आत्मस्वभाव में ही अंतर्मुख होकर उसमें से सम्यग्दर्शनादि धर्म प्राप्त करो। जिसप्रकार रत्नों की खान में से ही रत्न निकलते हैं; उसीप्रकार चैतन्यरत्न की ध्रुवखान आत्मा है, उसकी गहराई में उतरकर उसमें से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्न निकालो।

— आत्मधर्म, वर्ष १५, अंक १८०, अप्रेल, १९६०-कवर पृष्ठ ३

सम्पादकीय

क्रमबद्धपर्याय | एक अनुशीलन

[गतांक से आगे]

जैनदर्शन अकर्त्तावादी दर्शन कहा जाता है। अकर्त्तावाद का अर्थ मात्र इतना ही नहीं है कि इस जगत का कर्त्ता कोई ईश्वर नहीं है, अपितु यह भी है कि कोई भी द्रव्य किसी अन्य द्रव्य के परिणमन का कर्त्ता-हर्त्ता नहीं है। ज्ञानी आत्मा तो अपने विकार का भी कर्त्ता नहीं होता। यह बात समयसार के कर्त्ता-कर्म अधिकार एवं सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में विस्तार से स्पष्ट की गयी है।

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार की जिन गाथाओं की टीका में क्रमनियमितपर्याय का उल्लेख आया है, उनमें अंततः अकर्त्तृत्व ही सिद्ध किया है। जैसा कि निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है:—

''एवं हि जीवस्य स्वपरिणामैरुत्पद्यमानस्याप्यजीवेन सह कार्यकारणभावो न सिध्यति, सर्वद्रव्याणां द्रव्यांतरेण सहोत्पाद्योत्पादकभावाभावात्; तदसिद्धौ चाजीवस्य जीवकर्मत्वं न सिध्यति; तदसिद्धौ च कर्तृकर्मणोरनन्यापेक्षसिद्धत्वात् जीवस्याजीवकर्तृत्वं न सिध्यति। अतो जीवोऽकर्त्ता अवतिष्ठते।

इसप्रकार जीव अपने परिणामों से उत्पन्न होता है तथापि उसका अजीव के साथ कार्यकारण भाव सिद्ध नहीं होता, क्योंकि सर्व द्रव्यों का अन्य द्रव्य के साथ उत्पाद्य-उत्पादक भाव का अभाव है; उसके (कार्यकारण भाव के) सिद्ध न होने पर, अजीव के जीव का कर्मत्व सिद्ध नहीं होता; और उसके (अजीव के जीव का कर्मत्व) सिद्ध न होने पर, कर्त्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षतया (अन्य द्रव्य से निरपेक्षतया स्वद्रव्य में ही) सिद्धि होने से जीव के अजीव का कर्त्तृत्व सिद्ध नहीं होता। इसलिये जीव अकर्त्ता सिद्ध होता है।

भावार्थ :- सर्व द्रव्यों के परिणाम भिन्न-भिन्न हैं। सभी द्रव्य अपने-अपने परिणामों के कर्त्ता हैं; वे उन परिणामों के कर्त्ता हैं, वे परिणाम उनके कर्म हैं। निश्चय से किसी का किसी के

साथ कर्त्ता-कर्म संबंध नहीं है। इसलिये जीव अपने ही परिणामों का कर्त्ता है, और अपने परिणाम कर्म हैं। इसीप्रकार अजीव अपने परिणामों का ही कर्त्ता है, और अपने परिणाम कर्म हैं। इसीप्रकार जीव दूसरे के परिणामों का अकर्त्ता है।[१]''

इस पर कोई कहे न सही पर के परिणमन का कर्त्ता, पर अपने परिणमन का कर्त्ता-हर्त्ता तो मैं ही हूँ। उससे कहते हैं कि अवश्य हो, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपनी परिणति का कर्त्ता-भोक्ता तो है ही, पर इसका आशय यह नहीं कि सर्वज्ञ के ज्ञान में आपका जो भावी परिणमन झलका है, आप उसमें कुछ फेरफार कर सकते हैं।

यदि फेरफार नहीं कर सकते तो फिर मैं अपनी परिणति का कर्त्ता ही क्या रहा—इसप्रकार की शंका भी जगत को होती है, क्योंकि जिसने फेरफार करने को ही करना मान रखा है, वह इससे आगे सोच ही क्या सकता है? क्या फेरफार करने के बिना कोई करना होता ही नहीं है? क्या जैसा होना नहीं हो, वैसा करना ही करना है; जैसा होना हो वैसा करना करना नहीं है क्या?

स्वकर्तृत्व कहो, सहजकर्तृत्व कहो, अकर्तृत्व कहो—सबका एक ही अर्थ है। जैनदर्शन अकर्त्तावादी है—इसका भाव ही यही है कि सहजकर्त्तावादी या स्वकर्त्तावादी है, परकर्त्तावादी या फेर-फार कर्त्तावादी नहीं है। सहज होना और करना एक ही बात है। भविष्य में हमारा जो होना है, वही होगा अर्थात् हम पुरुषार्थपूर्वक वही करेंगे। इसमें पुरुषार्थ की कहीं कोई उपेक्षा नहीं है, कहीं कोई पराधीनता नहीं है, सर्वत्र स्वाधीनता का साम्राज्य है। इसमें सभी कुछ है—स्वभाव है, पुरुषार्थ है, भवितव्य है, काललब्धि है, और निमित्त भी है—पाँचों ही समवाय उपस्थित हैं।

आत्मा अपने परिणामों का कर्त्ता है या नहीं? इस संदर्भ में पूज्य स्वामीजी का स्पष्टीकरण इसप्रकार है:-

''**प्रश्न :-** पर्यायें क्रमबद्ध हैं; आत्मा की पर्यायें भी क्रमबद्ध जो होनेयोग्य हैं, वही होती हैं; इसलिये आत्मा उनका अकर्त्ता है-(क्या) यह बात ठीक है?

उत्तर :- नहीं; आत्मा अपनी पर्याय का अकर्त्ता है—यह बात ठीक नहीं है। आत्मा

१. समयसार, गाथा ३०८ से ३११ की टीका व भावार्थ

अपनी जिन-जिन क्रमबद्धपर्यायोंरूप से परिणमित होता है, उनका कर्त्ता वह स्वयं ही है; परंतु यहाँ इतना विशेष समझने योग्य है कि 'आत्मा का ज्ञायकस्वभाव है'—ऐसी जिसकी दृष्टि हुई है अथवा क्रमबद्धपर्याय का निर्णय हुआ है, वह जीव मिथ्यात्वादि भावोंरूप से परिणमित होता ही नहीं। इसलिये मिथ्यात्वादि भावों का तो वह अकर्त्ता ही है तथा जो अल्परागादि विकार होता है, उसमें भी वह एकत्वरूप से परिणमित नहीं होता। उस अपेक्षा से वह रागादि का भी अकर्त्ता है; किंतु अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि निर्मल 'क्रमबद्धपरिणामों' का तो वह कर्त्ता है। 'क्रमबद्धपरिणाम' का ऐसा अर्थ नहीं है कि आत्मा स्वयं कर्त्ता हुये बिना ही वह परिणाम हो जाता है। ज्ञानी अपने निर्मल ज्ञानभाव को करता हुआ स्वयं उसका कर्त्ता होता है और अज्ञानी अपने अज्ञानभाव को करता हुआ उसका कर्त्ता होता है।

इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य स्वयं ही अपने क्रमबद्धपरिणाम का कर्त्ता है।''[१]

इसी बात को यदि वस्तुस्वरूप की ओर से विचार करें तब भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे, क्योंकि नित्यता के समान परिणमन भी प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव है। जिस वस्तु का जो स्वभाव है, उसके होने में पर के सहयोग की क्या आवश्यकता है? यदि द्रव्य को अपने परिणमन में पर की अपेक्षा हो तो फिर वह उसका स्वभाव ही क्या रहा? द्रव्य शब्द ही द्रवणशीलता-परिणमनशीलता का द्योतक है। जो स्वयं द्रवे-परिणमे, उसे ही द्रव्य कहते हैं।

प्रत्येक द्रव्य में एक द्रव्यत्व नाम का सामान्यगुण है-शक्ति है। उसके कारण ही द्रव्य परिणमनशील है। परिणमनशीलता द्रव्य का सामान्य धर्म है, सहज धर्म है, स्वाभाविक धर्म है, परनिरपेक्ष धर्म है।

जब प्रत्येक द्रव्य स्वयं अपने से द्रव रहा है, अपने नियमित प्रवाह में बह रहा है, सहज क्रमबद्ध परिणमन रहा है; तो फिर ऐसी क्या आवश्यकता है कि वह अपने क्रम को भंग करे? वस्तु के स्वरूप में ऐसा क्या व्यवधान है कि वह अपनी चाल बदले? और क्यों बदले? उसे क्या जरूरत है, अपनी चाल बदलने की?

बदले भी कैसे? जबकि प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय स्व-अवसर पर ही होती है। जैसा पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि जितने तीन काल के समय हैं, उतनी ही प्रत्येक द्रव्य की

१. आत्मधर्म, वर्ष १५, अंक १७९, मार्च १९७०, पृष्ठ ५०२

पर्यायें हैं और एक-एक पर्याय एक-एक समय में खचित है। यदि एक पर्याय को अपने स्थान (समय) से हटाया जायेगा तो वह स्थान (समय) रिक्त हो जायेगा। उस स्थान (समय) की पूर्ति हेतु दूसरी पर्याय कहाँ से आवेगी? जिस इष्ट पर्याय को आप लगाना चाहते हैं, यदि उसे अपने स्थान (समय) से हटाकर वहाँ लायेंगे तो क्या यहाँ की पर्याय वहाँ ले जावेंगे? जो कि संभव नहीं।

आखिर वस्तुस्वरूप की सहज स्वीकृति क्यों नहीं, बलात् परिवर्तन का हठ क्यों? धर्म तो वस्तुस्वरूप की सहज स्वीकृति का नाम है। वस्तुस्वरूप की सहज परिणति की स्वीकृति ही धर्म का आरंभ है। ऐसे व्यक्ति की दृष्टि सहज अंतरोन्मुखी होती है। क्रमबद्ध परिणमन की सहज स्वीकृति वाले जीव की क्रमबद्ध में भी सहज स्वभाव-सन्मुख परिणमन होता है। वस्तुस्वरूप में ही ऐसा सुव्यवस्थित सुमेल है।

द्रव्य और गुण के समान पर्याय भी सत् है। प्रवचनसार गाथा १०७ में इसका स्पष्ट उल्लेख है। द्रव्य और गुण यदि त्रिकाली सत् है तो पर्याय स्वसमय अर्थात् एकसमय की सत् है। जिसप्रकार द्रव्य और गुण की त्रिकाल सत्ता को चुनौती (चैलेंज) नहीं दी जा सकती; उसीप्रकार पर्याय की भी स्वसमय सत्ता को चुनौती नहीं दी जा सकती।

किंतु द्रव्य और गुणों से बेखबर अज्ञानी की दृष्टि पर्याय पर रहती है, पर्याय के फेर-फार करने के विकल्प में उलझी रहती है। इसी उलझाव के कारण उसकी दृष्टि स्वद्रव्य पर नहीं जा पाती, वह द्रव्यदृष्टि अर्थात् सम्यग्दृष्टि नहीं बन पाता।

आगम में 'पज्जयमूढा हि परसमया'[१] तथा 'जो पज्जएसु णिरदा जीवा परसमइगति णिदिट्ठा'[२] कहकर पर्यायदृष्टिवंत को मिथ्यादृष्टि और द्रव्यदृष्टिवंत को सम्यग्दृष्टि कहा गया है।

द्रव्यदृष्टि प्राप्त करने के लिये पर्यायों की क्रमबद्धता की प्रतीति आवश्यक है। पर्याय भी स्वकाल का सत् है, उसमें भी किसी प्रकार का फेरफार संभव नहीं—ऐसी प्रतीति होते ही पर्याय की ओर से निश्चिंत दृष्टि स्वभाव की ओर ढुल जाती है। क्रमबद्धपर्याय की प्रतीति बिना दृष्टि का स्वभाव-सन्मुख होना संभव नहीं है; क्योंकि पर्यायों में अपनी इच्छानुकूल फेरफार करने का भार उस पर बना रहता है। फेरफार करने के भार से बोझिल दृष्टि में यह सामर्थ्य नहीं

१. प्रवचनसार, गाथा ९३ २. प्रवचनसार, गाथा ९४

कि वह स्वभाव की ओर देख सके। दृष्टि के संपूर्णतः निर्भार हुए बिना अंतर-प्रवेश संभव नहीं। कहा भी है :-

जिनके माथे भार, वे डूबे मझधार में।
हम तो उतरे पार, झोंक भार को भार में॥

भार ऊपर लेकर चढ़ना कठिन ही नहीं असंभव है, विशेषकर ऐसा भार जिसके उठाने की भी सामर्थ्य हममें न हो। क्या कोई पर्वत को लेकर पर्वत पर चढ़ सकता है ? नहीं, कदापि नहीं। उसीप्रकार परद्रव्य में फेरफार करने की बुद्धिवाला व्यक्ति निजद्रव्य में प्रवेश नहीं कर सकता।

यद्यपि स्वयं परिणमनशील इस जगत के परिणमन का रंचमात्र भी उत्तरदायित्व इसके माथे पर नहीं है तथापि अज्ञानी आत्मा सवयं की मिथ्या कल्पना से, आरोपित भार से स्वयं ही दबा जा रहा है।

पर में तो इसे कुछ करना ही नहीं है, अपनी पर्याय में भी कुछ नहीं करना है। सब कुछ सहज हो रहा है और होता रहेगा। कहा भी है:-

''होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।''

इस पर कुछ लोग कहते हैं कि जानना-देखना तो आत्मा का स्वभाव है, वह तो करना ही पड़ेगा। उनसे हमारा कहना है कि उसमें करना क्या पड़ेगा ? वह भी तो सहज होता है।

''क्या जाने और क्या न जाने—इसका विवेक तो करना ही पड़ेगा ? ऐसा थोड़े ही चलेगा कि चाहे जो जानते-देखते रहो। कुछ तो मर्यादित होना ही पड़ेगा, कुछ तो नक्की करना होगा। क्या हम अपने ज्ञान-दर्शन को ऐसा ही छुट्टा छोड़ दें—साँड जैसा; जो चाहे जहाँ मुँह मारता फिरे; कम से कम उसे तो स्वभाव-सन्मुख करना ही पड़ेगा। यह सब कैसे चलेगा कि कुछ नहीं करना है, कुछ नहीं करना है ?'ज्ञान को स्वभाव-सन्मुख करो'—कम से कम इतनी बात तो रहने दो।''

यदि ऐसा कोई कहे तो उससे कहते हैं—भाई ! ज्ञान को स्वभाव-सन्मुख करने के विकल्प से ज्ञान स्वभाव-सन्मुख नहीं होता, अपितु इस विकल्प के भी भार से निर्भार होने पर ज्ञान स्वभाव-सन्मुख ढलता है।

ज्ञान की प्रत्येक पर्याय स्वकार्य करने में परमुखापेक्षी नहीं है। वह अपने में परिपूर्ण है, स्वकार्य करने में पूर्ण सक्ष्म है, पूर्ण सुयोग्य है। उसकी योग्यता में उसका ज्ञेय भी निश्चित है। ज्ञान की जिस पर्याय में जिस ज्ञेय को जानने की योग्यता है, वह पर्याय उसी ज्ञेय को अपना विषय बनायेगी, उसमें किसी का कोई हस्तक्षेप नहीं चल सकता।

यह एक ध्रुव सत्य है कि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता अपितु ज्ञान के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है; अन्यथा ऐसा क्यों होता है कि जो ज्ञेय सामने है, उसका तो ज्ञान नहीं होता और जो ज्ञेय सामने नहीं है—क्षेत्र-काल से दूर है, उसका ज्ञान होता दिखायी देता है। नवविवाहित ऑफीसर को सामने बैठा क्लर्क दिखायी नहीं देता, अपितु ऑफिस से दूर घर में या पीहर में बैठी हुई पत्नी दिखायी देती है।

इस बात को न्यायशास्त्र के निम्नलिखित सूत्र से भली प्रकार समझा जा सकता है :-

स्वावरणक्षयोपशम लक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति ॥९ ॥[१]

स्वावरणक्षयोपशम है लक्षण जिसका—ऐसी योग्यता ही यह व्यवस्था करती है कि ज्ञान किसको जाने।

यहाँ क्षयोपशम ज्ञान किसको जाने और किसको न जाने—इसकी चर्चा चल रही है। केवलज्ञान में तो यह प्रश्न ही संभव नहीं है, क्योंकि वह तो एकसमय में ही लोकालोक को जानता है।

बौद्धों का यह कहना है कि—ज्ञान ज्ञेय से उत्पन्न होता है, ज्ञेयाकार होता है और ज्ञेयों को जानने-वाला होता है; जिसे वे तदुत्पत्ति, तदाकार और तदध्यवसाय के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जैनों को उक्त बात स्वीकार नहीं है। इस संदर्भ में वे जैनों से पूछते हैं कि यदि ज्ञान ज्ञेय से उत्पन्न नहीं होता है तो फिर तुम्हारे यहाँ ज्ञान अमुक ज्ञेय को ही क्यों जाने, अन्य को क्यों नहीं—इसका नियामक कौन होगा? बौद्धों के यहाँ तो जो ज्ञान जिस ज्ञेय से उत्पन्न होता है, उसी को जानता है—यह व्यवस्था है। जैनों में इस संदर्भ में क्या व्यवस्था है, इसके उत्तर में उक्त सूत्र आया है। जिसका आशय है कि योग्यता ही इसका नियामक है अर्थात् ज्ञान की विवक्षित पर्याय में जानने की क्षमता के साथ-साथ यह भी निश्चित है कि वह किस ज्ञेय को

१. परीक्षामुख, अध्याय २, सूत्र ९

जानेगी। योग्यता को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि तत्संबंधी आवरण का क्षयोपशम है लक्षण जिसका ऐसी योग्यता अर्थात् उस योग्यता में जिस ज्ञेय को जानना है, तत्संबंधी आवरण का क्षयोपशम होता है।

इस सबसे यही सिद्ध होता है कि ज्ञान की प्रत्येक पर्याय का ज्ञेय भी निश्चित है और वह उसकी योग्यता में ही सम्मिलित है। जब ज्ञान का ज्ञेय भी निश्चित है तो फिर यह बात कहाँ रह जाती है कि क्या जाने और क्या न जाने—इसका विवेक तो करना ही होगा, इस दिशा में कुछ न कुछ तो करना ही होगा।

तुझे इतना भी भार अपने माथे पर नहीं रखना है, तब निर्भार होगा और तभी ज्ञान की पर्याय का ज्ञेय आत्मस्वभाव बनेगा अर्थात् दृष्टिस्वभाव-सन्मुख होगी। दृष्टि के स्वभावसन्मुख होने का एकमात्र उपाय यही है।

यहाँ यह प्रश्न संभव है कि यदि ऐसी बात है तो फिर यह उपदेश क्यों दिया जाता है कि दृष्टि को आत्म-सन्मुख करो, आत्मा को जानो आदि।

इसप्रकार के प्रश्न तो अनेक उठते हैं। उन सब पर आगे चलकर पृथक् से विचार किया जायेगा।

प्रत्येक द्रव्य पर्वत (अचल) है। उसे चलायमान करने का प्रयत्न करना बालचेष्टा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यदि द्रव्य पर्वत (अचल) है तो पर्याय भी पार्वती (अचला) है। जिसप्रकार अचल द्रव्य को चलायमान नहीं किया जा सकता है, उसीप्रकार अचला पर्याय को भी स्वकाल से चलायमान करना संभव नहीं है।

द्रव्य और गुणों में फेर-फार करने का विकल्प न आकर पर्याय में ही फेर-फार करने का विकल्प क्यों आता है ? इसका सहज मनोवैज्ञानिक कारण है। जहाँ फेर-फार करने की गुंजाइश दिखती है, वहाँ ही फेर-फार करने का विकल्प आता है; जहाँ गुंजाइश नहीं दिखायी देती, वहाँ कुछ करने का विकल्प भी नहीं उठता है।

जैसे हम किसी अवैध कार्य को कराना चाहते हैं, उसे करना अनेक सरकारी कर्मचारियों के हाथ में है। जिस कर्मचारी पर हमें यह भरोसा हो कि यह किसी भी कीमत पर अवैध कार्य नहीं करेगा, हम उसे करने को कहते भी नहीं है; पर जिस कर्मचारी के बारे में हम

यह समझते हैं कि इससे साम-दंड-भेद से काम कराया जा सकता है, उसी से हरप्रकार से कार्य कराने का प्रयत्न करते हैं।

उसीप्रकार द्रव्य और गुण की अचलता प्रायः सबके ख्याल में सहज आ जाती है, अतः उनमें फेरफार करने की बुद्धि नहीं होती; किंतु पर्याय की अचलता सहज ख्याल में नहीं आती—यही कारण है कि उसमें फेरफार करने की बुद्धि बनी रहती है। क्रमबद्धपर्याय की सच्ची समझ बिना पर्यायों की अचलता ख्याल में नहीं आती और उनमें फेरफार करने की बुद्धि बनी ही रहती है।

पर्यायों में फेरफार करने की मिथ्याबुद्धि ही अज्ञान है, कर्त्तावाद है। इसी कर्त्तावादी अज्ञान का निषेध समयसार के कर्त्ता-कर्म अधिकार और सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में पूरी शक्ति से किया गया है। जैनदर्शन के अकर्त्तावाद का यही मर्म है।

जैनदर्शन का अकर्त्तावाद मात्र यहीं तक सीमित नहीं कि कोई तथाकथित ईश्वर जगत का कर्त्ता नहीं है। अकर्त्तावाद का व्यापक अर्थ यह है कि कोई भी द्रव्य किसी अन्य द्रव्य का कर्त्ता-हर्त्ता-धर्ता नहीं; यहाँ तक कि अपनी भी क्रमनिश्चित पर्यायों में वह किसी प्रकार का फेरफार नहीं कर सकता है। यद्यपि द्रव्य अपनी पर्यायों का कर्त्ता है, तथापि फेर-फार कर्त्ता नहीं।

क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा अथवा उक्त अकर्त्तावादी दृष्टिकोण का एकमात्र सच्चा फल दृष्टि का स्वभाव-सन्मुख होना ही है। क्रमबद्धपर्याय की विकल्पात्मक श्रद्धा करने के उपरांत भी यदि दृष्टि स्वभाव-सन्मुख नहीं हुई तो समझना चाहिये कि उसे क्रमबद्धपर्याय की भी विकल्पात्मक श्रद्धा ही है, सच्ची श्रद्धा नहीं। क्योंकि क्रमबद्धपर्याय की सच्ची श्रद्धा और दृष्टि का स्वभाव-सन्मुख होकर पर्याय में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होने का एक काल है।

[क्रमशः]

क्षायकादिभावस्थान भी जीव नहीं

परमपूज्य दिगम्बर आचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की ४१वीं गाथा एवं उसमें समागत कलश नं० ५८ व ५९ पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है:-

णो खइयभावठाणा णो खयउवसमसहावठाणा वा।
ओदइयभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा॥४१॥

जीव को क्षायिकभाव के स्थान नहीं हैं, क्षयोपशमस्वभाव के स्थान नहीं हैं, औदयिकभाव के स्थान नहीं हैं अथवा उपशमस्वभाव के स्थान नहीं हैं।

[गतांक से आगे]

क्षायोपशमिकभाव अपूर्ण पर्याय है, इसलिये उसके आश्रय से धर्म नहीं होता।

क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद इसप्रकार हैं:—

(१) मतिज्ञान :- मतिज्ञान कथंचित् निर्मलज्ञान है, कथंचित् आवरण वाला है। सम्यग्ज्ञानरूप होने से उसकी स्थिति सादि-सांत है, नवीन प्रकट होता है और केवलज्ञान होने पर नाश हो जाता है। अत: मतिज्ञान की पर्याय धर्म के लिये आदरणीय नहीं है।

(२) श्रुतज्ञान :- श्रुतज्ञान भी सम्यग्ज्ञानरूप होने से सादि-सांत है और केवलज्ञान होने पर नाश हो जाता है। श्रुतज्ञान से केवलज्ञान अथवा मोक्ष नहीं होता; उसका अभाव होने पर ही केवलज्ञान होता है, अभाव में से भाव आता नहीं। केवलज्ञान अथवा मोक्ष का कारण परमशुद्धस्वभाव है। श्रुतज्ञान की पर्याय धर्म के लिये आदरणीय नहीं है।

(३) अवधिज्ञान :- किसी सम्यग्दृष्टि के अवधिज्ञान प्रकट होता है, वह रूपीपदार्थों को जानता है, उसकी स्थिति सादि-सांत है, केवलज्ञान होने पर नाश हो जाता है। इसलिये अवधिज्ञान मोक्ष का कारण नहीं और आदरणीय भी नहीं।

(४) **मन:पर्ययज्ञान** :- किसी भावलिंगी मुनि के मन:पर्ययज्ञान प्रकट होता है, वह सामनेवाले जीव के रूपीपदार्थों संबंधी विचारों को जान लेता है। उसका भी नाश होने पर केवलज्ञान प्रकट होता है। मन:पर्ययज्ञान पर्याय होने से मोक्ष का कारण नहीं, अत: आदरणीय नहीं।

(५) **कुमतिज्ञान** :- पुण्य से धर्म माने, त्रिकाली से लाभ न माने—ऐसे मिथ्यादृष्टि को कुमतिज्ञान है और वह ज्ञान धर्म के लिये आदरणीय नहीं है।

(६) **कुश्रुतज्ञान** :- मिथ्यादृष्टि के विशेष उत्तरतर्कणारूपी ज्ञान को कुश्रुतज्ञान कहते हैं। जो जीव धर्म प्रकट करे उसके लिये अनादि-सांत है। वह ज्ञान कुज्ञान है, धर्म के लिये आदरणीय नहीं और धर्म का कारण भी नहीं।

(७) **कुअवधिज्ञान** :- मिथ्यादृष्टि का रूपीपदार्थों को जाननेवाला विभंगज्ञान कुअवधिज्ञान है। वह भी धर्म का कारण नहीं है।

(८) **चक्षुदर्शन** (९) **अचक्षुदर्शन** (१०) **अवधिदर्शन** :- सामान्य अवलोकनशक्ति की अधूरी पर्यायें हैं, अत: ये भी धर्म का कारण नहीं हैं।

(११) **काललब्धि** :- इसे क्षयोपशमलब्धि भी कहते हैं। ज्ञानावरणी के क्षयोपशम से उत्पन्न होनेवाले ज्ञान के उघाड़ को काललब्धि कहते हैं। वह पर्याय है, धर्म का कारण नहीं।

(१२) **करणलब्धि** :- सम्यग्दर्शन होते समय अथवा चारित्रदशा होते समय आत्मा में अल्पकालीन शुद्ध परिणाम होता है उसको करणलब्धि कहते हैं। वह धर्म का कारण नहीं है। जीव अपने शुद्ध चैतन्य के आश्रय से सम्यक्त्व अथवा चारित्र प्रकट करता है, तब करणलब्धि से हुई—ऐसा कथन करने में आता है।

(१३) **उपदेशलब्धि** :- इसे देशनालब्धि भी कहते हैं। ज्ञानी पुरुषों के पास से देशना सुनकर विचार करने की शक्ति को देशनालब्धि कहते हैं। यह भी पर्याय है, अत: धर्म का कारण नहीं।

(१४) **उपशमलब्धि** :- इसे विशुद्धलब्धि भी कहते हैं। कषाय की मंदता के परिणाम होना ही उपशमलब्धि कही जाती है-वह धर्म का कारण नहीं है।

(१५) **प्रायोग्यलब्धि :-** कर्म की स्थिति मात्र अंत:कोड़ाकोड़ी रह जानेरूप आत्मा की योग्यता को प्रायोग्यलब्धि कहते हैं। इसके आधार से धर्म नहीं होता।

(१६) **वेदकसम्यक्त्व :-** इसे क्षायोपशमिकसम्यक्त्व भी कहते हैं, यह कथंचित् निर्मल तथा कथंचित् विघ्नसहित है। यह मोक्ष का कारण नहीं है।

(१७) **वेदकचारित्र :-** इस चारित्र में कुछ निर्मलता और कुछ मलिनता है। यह भी मोक्ष का कारण नहीं है।

(१८) **संयमासंयम परिणति :-** अंतरभान होने के बाद अमुक राग टला है और अमुक राग शेष है, वह संयमासंयम दशा-श्रावकदशा कही जाती है। किंतु वह मोक्ष का कारण नहीं है।

इसप्रकार क्षयोपशमभाव के अठारह भेद कहे। इनमें आंशिक निर्मलता और आंशिक आवरणवाली पर्यायें हैं। उन पर्यायों के आधार से धर्मदशा या मोक्षदशा प्रकट नहीं होती।

औदयिकभाव विकार है, विकार के लक्ष से धर्म नहीं होता।

औदयिकभाव के इक्कीस भेद इसप्रकार हैं:—

(१) **नरकगति :-** जो जीव तीव्र पाप करता है, वह नरकगति में जाता है। वह धर्म का कारण नहीं है। कितने ही जीव कहते हैं कि खूब दु:ख वेदन करो तो सम्यक्त्व हो जायेगा। किंतु नरक के जीव तो बहुत दु:ख सहते हैं, अत: उन्हें धर्म हो जाना चाहिये, परंतु ऐसा बनता नहीं है।

नरक में कोई जीव पूर्व के संस्कारवश पुरुषार्थ जागृत करे तो धर्म प्राप्त कर लेता है और वह धर्म ध्रुव चैतन्य के आश्रय से होता है, नरकगति धर्म का कारण नहीं।

(२) **तिर्यंचगति :-** तिर्यंचगति भी धर्म का कारण नहीं है।

(३) **मनुष्यगति :-** मनुष्यगति धर्म का कारण नहीं; यदि यह धर्म का कारण हो तो सभी मनुष्यों को धर्म होना चाहिये, परंतु जो मनुष्य ध्रुवस्वभाव का अवलंबन लेते हैं, वही धर्म प्राप्त करते हैं। मनुष्यगति अथवा तीर्थंकर पुण्यप्रकृति धर्म का कारण नहीं।

(४) **देवगति :-** देवगति धर्म का कारण नहीं। देवऋद्धि देखकर किसी को सम्यक्त्व होता है, वह निमित्त का कथन है। अपने शुद्धचैतन्यस्वभाव के अवलंबन से धर्म होता है-

उसमें किसी जीव को देवऋद्धि का देखना निमित्त होता है। वास्तव में देवगति धर्म का कारण है नहीं।

(५) क्रोध (६) मान (७) माया (८) लोभ :- यह सब कषाय के परिणाम हैं और अधर्म के कारण हैं–धर्म के नहीं।

(९) स्त्रीलिंग :- पुरुष के साथ रमने का भाव स्त्रीवेद का उदय है – यह धर्म का कारण नहीं।

(१०) पुरुषलिंग :- स्त्री के साथ रमने का भाव पुरुषवेद का उदय है – यह धर्म का कारण नहीं।

(११) नपुंसकलिंग :- स्त्री–पुरुष दोनों के साथ रमने का भाव नपुंसकवेद का उदय है – यह धर्म का कारण नहीं।

इन विकारी भावों का आभाव करके शुद्धचैतन्य का अवलंबन लेने से धर्म होता है।

(१२) मिथ्यादर्शन :- आत्मस्वरूप की विपरीत मान्यता मिथ्यादर्शन है, वह सामान्यपने तो एक है किंतु उसके गर्भित भेद असंख्य हैं – उनसे धर्म नहीं है।

(१३) अज्ञान :- अल्पज्ञान–हीनज्ञान होना अज्ञान है, उसके कारण धर्म नहीं होता।

(१४) असंयम :- संयम न होना औदयिक भाव है, वह धर्म का कारण नहीं।

(१५) असिद्धत्व :- जीव की अशुद्धता जिसके कारण सिद्धदशा प्राप्त नहीं हो सकती और यह चौदहवें गुणस्थान तक उदय में है, अत: असिद्धत्व धर्म का कारण नहीं।

अब लेश्या के छह भेद कहते हैं। आत्मा के जिस परिणाम से कर्म का बंधन हो उसे लेश्या कहते हैं। दृष्टांतपूर्वक प्रत्येक लेश्या समझाते हैं। छह पुरुषों ने आम खाया परंतु सभी के परिणामों में अंतर है :-

(१६) शुक्ललेश्या :- पवनप्रेरित स्वयं भूमि पर गिरे हुए आम को ही खाने का भाव होना – यह शुक्ललेश्या का दृष्टांत है।

(१७) पद्मलेश्या :- वृक्ष पर चढ़कर आम तोड़कर खाने का भाव पद्मलेश्या का दृष्टांत है।

(१८) **पीतलेश्या :-** वृक्ष पर चढ़कर गुच्छा तोड़कर आम खाने का भाव होना - पीतलेश्या का दृष्टांत है।

(१९) **कापोतलेश्या :-** वृक्ष पर चढ़कर छोटी डाल तोड़कर आम खाने का भाव होना - कापोतलेश्या का दृष्टांत है।

(२०) **नीललेश्या :-** वृक्ष की मोटी डाल तोड़कर आम खाने का भाव होना - नील लेश्या का दृष्टांत है।

(२१) **कृष्णलेश्या :-** संपूर्ण वृक्ष काटकर आम खाने का भाव होना - कृष्णलेश्या का दृष्टांत है।

इनमें शुक्ल, पद्म, पीत, यह तीन शुभ हैं और कोपात, नील, कृष्ण, यह तीन अशुभ हैं। छहों लेश्या अधर्म का कारण हैं, शुक्ललेश्या भी धर्म का कारण नहीं है।

इसप्रकार औदयिक भाव के इक्कीस भेद बतलाये, इनमें से किसी भी भाव से धर्म नहीं होता। उन पर से लक्ष छोड़कर शुद्धचैतन्यस्वभाव का लक्ष करने पर ही धर्म होता है - वही शुद्धचैतन्यस्वभाव धर्म का कारण है।

पारिणामिकभाव के तीन भेद इसप्रकार हैं :-

(१) **जीवत्व पारिणामिक :-** त्रिकाल जीवपना रहना जीवत्व पारिणामिकभाव है। कभी भी जीव जड़ नहीं होता - कीड़ा हो, मकोड़ा हो; परंतु जीवत्व सदा कायम रहे। भव्य तथा अभव्य दोनों में यह समान होता है।

(२) **अभव्यत्व पारिणामिक :-** यह भाव अभव्य जीवों के होता है। जिस प्रकार ठर्रा (कठोर) मूंग पानी में उबालने पर गलती नहीं है - पकती नहीं है; उसीप्रकार अभव्य जीव को कभी भी मोक्ष होता नहीं है। पाप किया है इसलिये अभव्य हुआ है - ऐसा नहीं है, परंतु उसमें तो तीनों काल मोक्ष जाने की अयोग्यता है। अभव्यों की अपेक्षा भव्यजीव अनंत गुणे अधिक हैं।

(३) **भव्यत्वपारिणामिक :-** यह भाव भव्य जीवों के होता है। जो मुक्ति प्राप्त करने के योग्य होता है, उसे भव्य कहते हैं। पुण्य किया इसलिये भव्य है - ऐसा नहीं है, उसका तो भव्यपने का स्वभाव ही है।

इसप्रकार पाँच भावों का कथन समाप्त हुआ।

पाँच भावों में क्षायिकभाव कार्यसमयसाररूप है। आत्मा शुद्ध चिदानंदस्वरूप है; उसमें श्रद्धा, ज्ञान और रमणता उसके अंतरशक्ति व्यक्त हुई, उस पूर्ण निर्मल व्यक्तदशा को कार्यसमयसार कहते हैं।

कर्मों के उदय से होनेवाला औदयिकभाव, कर्मों के उपशम से होनेवाला औपशमिक भाव और कर्मों के क्षयोपशम से होनेवाला क्षायोपशमिकभाव संसारी जीवों के ही होता है, सिद्ध जीवों के यह भाव नहीं होते।

औदयिक आदि चारों भाव आवरणसंयुक्त हैं; अतः उनका आश्रय करनेयोग्य नहीं है।

यहाँ क्षायिकभाव को भी आवरणसंयुक्त कहा - ऐसा क्यों? पूर्वोक्त चारों भाव आवरणसंयुक्त होने से मुक्ति में कारण नहीं हैं। औदयिकभाव में कर्मों का उदय है, उपशमभाव में कर्मों का उपशम है, क्षयोपशमभाव में कर्मों का क्षयोपशम है। यह सब आवरणसंयुक्त हैं यह बात तो ठीक है; किंतु क्षायिकभाव तो कर्म के क्षय से उत्पन्न होता है, फिर भी यहाँ उसको आवरणसंयुक्त कहने का कारण क्या है?

क्षायिकभाव में कर्म के अभाव की अपेक्षा आती है तथा निचली दशा में क्षायिकभाव प्रगट नहीं है और उसका विचार करने जाये तो आत्मा को आवरण होता है, अतः उसका लक्ष करने जैसा नहीं है। यहाँ उसे आवरणसंयुक्त कहने का प्रयोजन उसके ऊपर से लक्ष हटाकर परमपारिणामिकभाव पर लक्ष कराने का है। उदय, उपशम, क्षयोपशमभाव क्षणिक पर्यायें हैं, उनके अवलंबन से धर्म नहीं होता और क्षायिक के लक्ष से भी राग की उत्पत्ति होती है, इसलिये उसके ऊपर से भी लक्ष छोड़ देना चाहिये। इन चारों में से कोई भी अवलंबन लेने योग्य नहीं है।

परमपारिणामिकभाव अनादि-अनंत एकरूप शुद्ध है, उसके आश्रय से धर्मदशा प्रगट होती है।

परमपारिणामिकभाव तीनोंकाल उपाधि तथा कर्म की अपेक्षा से रहित है, त्रिकाल एकरूप रहनेवाला शुद्धभाव है, उसकी भावना से मुक्ति प्राप्त होती है - किंतु औदयिकादि चार भावों से मुक्ति प्राप्त नहीं होती। मुमुक्षु अर्थात् पंचमभाव की भावना वाले जीव जो शुद्ध चिदानंद

स्वरूप को भाते हैं, वे वर्तमान काल में महाविदेहक्षेत्र से मोक्ष जाते हैं, भविष्य में भी जायेंगे और भूतकाल में भी गये हैं।

जिसप्रकार छोटी पीपल में चरपराहट भरी है, वही व्यक्त होती है, वह चरपराहट पत्थरों में से अथवा पूर्वपर्याय में से नहीं आती, अंदर शक्ति भरी है वही व्यक्त होती है; उसीप्रकार आत्मा में शक्ति भरी है, उसमें से व्यक्त दशा होती है—प्राप्त की प्राप्ति होती है। स्वभाव के आश्रय से धर्म होता है। औदयिकभाव जीव के वास्तविक स्वरूप नहीं हैं, उन्हें तो जीव कहा ही नहीं है। परमपारिणामिकभाव वाले जीव को जीव कहा है अथवा कारणपरमात्मा कहा है और उसी के आश्रयसे मोक्षदशा होती है। 'एक होय त्रयकाल में परमारथ का पंथ' तीनों काल में परमार्थ का मार्ग तो एक ही होता है – दूसरा होता ही नहीं।

प्रश्न – अज्ञानी जीव के भी परमपारिणामिकभावरूप कारणपरमात्मा विद्यमान है तथापि उसे कार्य क्यों प्रगट नहीं होता ?

समाधान – अज्ञानी जीव कारणपरमात्मा का स्वीकार नहीं करता, इसलिये शुद्ध कार्य प्रगट नहीं होता। जो जीव परमपारिणामिकभावरूप कारण को स्वीकार करते हैं, उनके शुद्धदशा कार्यरूप प्रगट होती है। जिसको कारणपरमात्मा का भान नहीं ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव को कारणस्वभाव विद्यमान होते हुए भी अविद्यमान जैसा ही है। त्रिकालीस्वभाव अथवा कारणस्वभाव का मनन करे तो कार्य प्रगट होता है। यदि मनन न करे तो प्रगट नहीं होता। चिदानंद ध्रुवस्वभाव जब श्रद्धा-ज्ञान में विदित होकर स्वीकार होवे तब कारणरूप की यथार्थता समझ में आई कही जाये। कारण का अवलंबन ले तो कार्य प्रगट हो। अज्ञानी जीव के कारण कार्यरूप से प्रगट नहीं होता; उसको तो कारणस्वभाव का भान ही नहीं है। ज्ञानी कहते हैं कि उसको भान नहीं होने पर भी उसका स्वभाव तो शुद्धकारणरूप ही पड़ा है, किंतु उसे भान नहीं है इसलिये कार्य प्रगट नहीं हुआ। अतः शुद्धस्वभाव परमपारिणामिक भाव के आश्रय से मुक्ति होती है – ऐसी श्रद्धा और ज्ञान करना उचित है।

अंचितपंचमगतये पंचमभावं स्मरन्ति विद्वान्सः।
संचितपंचाचाराः किंचनभावप्रपंचपरिहीणाः॥५८॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्यरूप पाँच आचारों से युक्त और किंचित् भी परिग्रह-

प्रपंच से सर्वथा रहित ऐसे विद्वान पूजनीय पंचमगति को प्राप्त करने के लिये पंचमभाव का स्मरण करते हैं।

किसका स्मरण - भजन करने से मुक्ति होती है ?

यहाँ मुनि की प्रधानता से बात है। आत्मा शुद्ध आनंदकंद है; उसका ज्ञान, प्रतीति, रमणता, विशेष शुद्धता और वीर्यरूप पाँच आचार मुनियों के होते हैं, तथा उन मुनियों के बाह्याभ्यंतर निर्ग्रंथ दशा वर्तती है। ऐसे मुनि पूजनीय सिद्धगति को प्राप्त करने के लिये परमपारिणामिकभाव ध्रुवस्वभाव का स्मरण करते हैं अर्थात् उसमें लीन होते हैं। देखो! यहाँ बताया कि किसके स्मरण करने से मोक्ष होता है।

(१) पुण्य-पाप के औदयिकभाव विकार हैं, विकार के स्मरण से विकार होता है।

(२) विकार को सम्यक् प्रकार से शांत करे वह उपशमभाव है। उपशमसम्यक्त्व अथवा चारित्र मात्र अंतर्मुहूर्त रहता है, वह पर्याय है, उसके स्मरण से राग होता है।

(३) अपूर्ण ज्ञानदशा - क्षायोपशमभाव वह भी पर्याय है, उसके स्मरण से राग होता है।

(४) क्षायिकभाव पूर्ण प्रगट भाव है, साधक के वह प्रगट नहीं है, अप्रगट का विचार करने से राग उत्पन्न होता है; अतः क्षायिकभाव का स्मरण भी नहीं।

(५) त्रिकाली एकरूप शुद्धस्वरूप का स्मरण करने से मुक्ति होती है - यह फलितार्थ है।

जो शुद्धभाव का भजन करते हैं, वे विद्वान हैं, इनमें श्रावक और मुनि दोनों ही समाविष्ट हो जाते हैं।

प्रश्न - इस स्मरण और भजन की बात किसके लिये चलती है ?

समाधान - इस श्लोक में मुनि की प्रधानता से बात ली है तथा गौण में श्रावक भी आ जाते हैं। श्रावक और साधु दोनों के लिये यह बात है।

नियमसार गाथा १३४ में लिखा है कि :-

''जो श्रावक अथवा श्रमण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की भक्ति करते हैं, उन्हें निवृत्तिभक्ति (निर्वाण की भक्ति) है ऐसा जिनों ने कहा है।''

श्रावक के ग्यारह पद हैं, उनमें प्रथमपद दर्शनप्रतिमा वाले श्रावक की बात है। आत्मा

का भान होने के उपरांत अर्थात् चौथे गुणस्थानवाले सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा जिसमें विशेष रमणता होती है, वह पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक दर्शनप्रतिमावाला है। वह किसकी भक्ति करता है ? उसी गाथा १३४ की टीका में लिखा है कि :-

''निजपरमात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान, अवबोध, आचरणस्वरूप शुद्धरत्नत्रयपरिणामों का जो भजन वह भक्ति है; आराधना ऐसा उसका अर्थ है।''

त्रिकाल एकरूप शुद्ध परमपारिणामिकभाव की आराधना करने से अपने आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और आंशिक रमणता प्रगट होती है—उसका नाम श्रावकपना है। जैन सम्प्रदाय में जन्म लिया इसलिये श्रावक है - ऐसा नहीं है। जैनदर्शन कोई बाड़ा नहीं है; वह तो वस्तुस्वरूप का उद्घाटन करता है।

इसप्रकार जो रत्नत्रय की सेवा करता है, उसके फल में अपुनर्भव स्त्री की सेवा वर्तती है अर्थात् भव के अभावस्वभावरूपी भक्ति वर्तती है। परमपारिणामिकभाव, त्रिकाली शुद्धस्वभाव, नित्यस्वभाव का जिसको भान है और उस स्वभाव के आश्रय से ही मोक्षदशा प्रगट होती है - ऐसा जिसको भान है और जो उस मोक्षगति के लिये शुद्धस्वभाव को भजता है - उसे विद्वान कहते हैं।

सुकृतमपि समस्तं भोगिनां भोगमूलं,
त्यजतु परमतत्त्वाभ्यासनिष्णातचित्तः।
उभयसमयसारं सारतत्त्वस्वरूपं,
भजतु भवविमुक्त्यै कोऽत्र दोषो मुनीशः ॥५९॥

समस्त सुकृत (शुभकर्म) भोगियों के भोग का मूल है। परमतत्त्व के अभ्यास में निष्णात चित्तवाले मुनीश्वर भव से विमुक्त होने हेतु उस समस्त शुभकर्म को छोड़ो और सारतत्त्वस्वरूप ऐसे उभय समयसार को भजो। इसमें क्या दोष है ?

शुभभाव संसार का मूल है, अतः हे मुनि! अस्थिरता के शुभाशुभभाव को छोड़कर त्रिकाली शुद्धस्वभाव को भजो।

दया, दान, व्रत, तप, पूजा, भक्ति, स्वाध्यायादि के फल में अनुकूल संयोग मिलते हैं, वे संसार हैं, भोगियों के भोग के मूल हैं। वे शुभभाव आत्मा के धर्म का कारण नहीं है। इसलिये

आचार्य भगवान कहते हैं कि—''धर्मी जीव को संयोगों की तथा संयोगों के कारणभूत शुभभावों की रुचि होना नहीं चाहिये; अपूर्णदशा में यद्यपि शुभराग आता है किंतु वह धर्म का कारण नहीं है। हे धर्मी मुनियों! आत्मा शुद्ध चिदानंदस्वरूप है – ऐसे अंतःतत्त्व के अभ्यास में निपुणज्ञानवाले मुनियों! निर्मलपरिणामवाले मुनियों! स्वर्गादि के भव से विमुक्त होने के लिये शुभभाव की तरफ का लक्ष छोड़ो।'' मुनियों का शुभभाव का आदर तो है ही नहीं, उसका तो निषेध ही वर्तता है; परंतु अस्थिरता के शुभभाव को भी छोड़ो – ऐसा कहते हैं। शुद्धस्वभाव और उससे प्रगटित शुद्धपर्याय—इसप्रकार दोनों समयसार को भजो। त्रिकालस्वभाव की सेवा करने में दोनों की सेवा आ जाती है; दोनों में अविनाभावी संबंध है। यह तो समझाने की-उपदेश की शैली है कि शुभव्यवहार को छोड़ो और शुद्धस्वभाव तो निश्चय है उसको भजो; वास्तव में तो शुद्धस्वभाव का ग्रहण करते ही निर्मलपर्याय प्रगट होती है और शुभभाव स्वयं ही छूट जाता है-छोड़ना नहीं पड़ता।

किसी जिज्ञासु ने प्रश्न किया कि यदि प्रतिक्रमण का समय हो गया हो और उस समय शुक्लध्यान आ जावे तो शुक्लध्यान में लीन हो जाना उचित है या प्रतिक्रमण करना?

वक्ता ने उत्तर दिया :- ''प्रतिक्रमण करना योग्य है।''

इसप्रकार उत्तरदाता वक्ता मिथ्यादृष्टि है; क्योंकि उसे शुभभाव का आदर और निज शुद्धभाव का अनादर-तिरस्कार वर्त रहा है, वह मिथ्यात्वी है और उसे प्रतिक्रमण भी हो सकता नहीं। अरे! सम्यग्दृष्टि को तो शुद्धस्वभावरूपी अमृत का भान है, उसे तो प्रतिक्रमण के शुभभाव में आना विषतुल्य प्रतिभासित होता है। इसलिये यहाँ कहते हैं कि व्यवहार प्रतिक्रमण उड़ जाये, पाँच समिति इत्यादि के पालन करने का शुभभाव भी उड़ जाये और मुनि शुद्धस्वभाव में ठहर जाये – स्थिर हो जाये तो क्या बाधा है? कोई बाधा नहीं। मुनि तो निर्दोषता की वृद्धि करता हुआ मोक्षदशा को उपलब्ध करेगा।

नृत्य-कुतूहल तत्त्व को मरि-पचि देखो धाय

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के ग्रंथराज समयसार की अमृतचंद्राचार्यकृत 'आत्मख्याति' टीका के बीच-बीच में अनेक महत्त्वपूर्ण छंद आये हैं, जिन्हें कलश कहते हैं। गाथा २५ की टीका में समागत कलश नं. २३ पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचन का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्
अनुभव भव मूर्त्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम्।
पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम् ॥२३॥

आचार्यदेव यहाँ कोमल संबोधन करके समझाते हैं कि हे भाई! तू किसी प्रकार महाकष्ट सहनकर अथवा मरकर भी तत्त्व का कौतूहली होकर इस शरीरादिक मूर्तद्रव्य का एक मुहूर्त के लिये पड़ौसी होकर आत्मानुभव कर। जिससे तू अपने आत्मा के विलासमयरूप को सर्व परद्रव्यों से भिन्न देखते ही इस शरीरादिक मूर्तिक पुद्गलद्रव्य के साथ हुए एकत्व के मोह को तत्काल ही छोड़ देगा।

यह जीव अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि है, उसके मिथ्यात्व का नाश कैसे हो? अनादिकालीन विपरीत मान्यता कैसे दूर हो? इसका उपाय इस कलश में बताते हैं।

आचार्यदेव अत्यंत करुणाभाव से कोमल संबोधन करके इस जीव को जागृत करते हुए कहते हैं कि तू किसी प्रकार महान से महान कष्ट सहन करके अथवा मरण जैसा भी कष्ट सहन करके, एक बार तत्त्व का कौतूहली हो, तत्त्व को जानने की रुचि उत्पन्न कर।

जैसे कोई साहसी पुरुष कुएँ में गहरी डुबकी लगाकर नीचे से रत्नमयी घट निकाल लाता है; उसीप्रकार तू भी अपने आत्मारूपी कुएँ में अत्यंत पुरुषार्थ करके गहरी डुबकी लगाकर ज्ञानरूपी घट को अर्थात् चैतन्य के पुंज उस तत्त्व को ले आ, और दुनिया की चिंता छोड़ दे।

ऐसा करने पर यदि तुझे सारी दुनिया पागल भी कहे तो भी तू उसकी चिंता छोड़कर, ऐसी और भी अनेकों प्रतिकूलताओं को भी सहन करके, अर्थात् उनसे उपेक्षा करके चैतन्य भगवान कैसे हैं ?—उन्हें देखने का एक बार साहस तो कर, कौतूहल तो उत्पन्न कर! यदि तू दुनिया की अनुकूलता या प्रतिकूलता को ही देखने में लग जायेगा, उनको उपेक्षित नहीं करेगा—तो तू चैतन्यप्रभु को नहीं देख पायेगा। इसलिये दुनिया की ओर से लक्ष्य हटाकर उनसे पृथक् अपने निजतत्त्व का कौतूहली हो।

सम्यग्दृष्टि का और जगत का कैसे मेल नहीं खाता, इसके लिये दृष्टांत से समझाते हैं:—

जैसे सूत और बेंत का मेल नहीं खाता; वैसे ही जिसे आत्मा की पहिचान करनी हो उसका और जगत का मेल नहीं खा सकता। इसप्रकार सम्यग्दृष्टिरूपी सूत और मिथ्यादृष्टिरूपी बेंत का मेल नहीं खाता।

आचार्यदेव कहते हैं कि हे बंधु! तू चौरासी के कुएँ में पड़ा हुआ है, उसमें से निकलने के लिये चाहे जितने भी उपसर्ग-परीषह आवें, तू उनकी चिंता छोड़कर शुभाशुभ विकारी भावों का भी दो घड़ी के लिये पड़ौसी हो तो तुझे चैतन्यदल अलग ही मालूम होगा। शरीरादिक तथा शुभाशुभ विकारीभाव सब मुझसे भिन्न हैं, मैं इन सबसे भिन्न हूँ, इनका पड़ौसी हूँ—इसप्रकार पड़ौसी होकर एक अपनी आत्मा का अनुभव कर - यह कहते हैं।

निकट में रहनेवाले पदार्थों से भी मैं अलग हूँ, मैं तो मात्र इनका ज्ञाता-दृष्टा हूँ। शरीर, मन, वाणी, इत्यादि सब बाहर के नाटक हैं, और इन सबको नाटकस्वरूप से ही देख, इनका मात्र साक्षी बन। ज्ञानसत्ता में जो यह सब ज्ञात होता है सो वह मैं नहीं हूँ; मैं तो मात्र इनका जाननेवाला हूँ।—इसप्रकार यथार्थ समझपूर्वक आत्मा को जान तो सही! और उसे जानकर उसमें लीन हो जा! आत्मा में यथार्थ श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र प्रगट होने का यही मार्ग है, अन्यथा नहीं।—इसप्रकार कहकर भी यहाँ आचार्यदेव ने तत्त्व का कुतूहल ही उत्पन्न किया है।

जैसे किसी मुसलमान और ब्राह्मण का घर पास-पास हो, परंतु ब्राह्मण उसके घर को अपना घर नहीं मानता, अपने घर को ही अपना मानता है; उसीप्रकार हे जीव! परपदार्थों को अपना पड़ौसी मानकर, उनके घर को अपना घर न मानकर, अपने चैतन्यस्वभाव को ही अपना घर मान, उसका ही अनुभव कर।

आगे आचार्य चैतन्यमूर्ति आत्मा के विलासमयरूप को देखने की प्रेरणा करते हैं और उसे देखने से ही परद्रव्यों के प्रति हुआ एकत्व का मोह छूट सकेगा—ऐसा कहते हैं। आचार्य कहते हैं कि इसने विपरीत पुरुषार्थ के द्वारा परपदार्थों में तथा विकारीभावों में ही स्वामित्व मान रखा है, आज तक उनका ही श्रद्धान, ज्ञान और आचरण किया है। इसलिये आचार्य प्रेरणा करते हैं कि समस्त परद्रव्यों तथा समस्त विकारभावों से दृष्टि हटाकर आत्मतत्त्व का ही श्रद्धान, ज्ञान और आचरण करके, चैतन्य के विलासमय आनन्द को ही देख! उस आनन्द को अंतरंग में देखने पर, शरीरादि का मोह तथा उनके साथ एकत्व का मोह तत्काल (झटिति) ही छूट जायेगा।

तीन लोक और तीन काल की प्रतिकूलताएँ भी यदि एकसाथ उपस्थित हो जावें तो भी तेरे स्वभाव में कोई आँच नहीं आयेगी, चूँकि उन सब प्रतिकूलताओं को सहन करने की शक्ति तेरी एकसमय की पर्याय में है। और यदि तू उससमय अपने स्वभाव में स्थिर रहेगा तो इन सब परीषहों का तुझ पर किंचित् भी असर न होगा; तू अपने व्यापार से किंचित् भी चलायमान नहीं होगा।

जैसे किसी सुकोमल राजकुमार को अग्नि की भयंकर ज्वालामयी भट्टी में जीवित ही फेंक दिया जाये तो उससमय उसे जितनी वेदना होती है, उससे अनंतगुनी वेदना तो सामान्य नारकी को होती है, और सातवें नरक में तो उससे भी अनंतानंतगुनी वेदना होती है। यदि यह जीव चाहे तो संस्कार के वश वहाँ भी स्वोन्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्रगट कर सकता है।

यद्यपि वहाँ सत्समागम नहीं है; किंतु पहले एक बार सत्समागम किया था, सत् का श्रवण किया था; इसलिये वर्तमान सम्यक्विचार के बल से सातवें नरक की घोर वेदना के काल में भी सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है, स्वरूप का संवेदन होता है, और स्वरूप-संवेदन की अवस्था में ऐसी भयंकर वेदना का कुछ भी असर नहीं होता। क्योंकि उसे यह दृढ़ विश्वास है कि मेरे ज्ञानस्वरूप चैतन्य पर कोई अन्य पदार्थ असर नहीं कर सकता। वह तो आत्मा के विलासरूप का आनंद भोगता है।

मनुष्यभव पाकर भी यह जीव व्यर्थ का रोना रोता है। अरे! अब सत्समागम से आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहिचान कर आत्मानुभव कर। आत्मानुभव की तो ऐसी महिमा है

कि एक मुहूर्त के लिये भी यह जीव स्वरूप में स्थिर हो जावे तो साक्षात् केवलज्ञान को उत्पन्न करके सिद्धावस्था को प्राप्त करे। और न सही मुहूर्त के लिये, एकसमय मात्र के लिये भी स्वरूप में चला जावे तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जावे; यह तो और भी सुगम और सरल है। इसलिये इस भव में सम्यग्दर्शन को प्राप्त करके मनुष्यजन्म को सार्थक तो करना ही चाहिये।

यहाँ कोई शंका करता है कि आप अंतर्मुहूर्त की बात करते हैं, किंतु हम तो घंटों बैठकर विचार करते हैं—फिर भी कुछ समझ में नहीं आता ?

उसका समाधान इसप्रकार है कि मात्र आत्मासंबंधी विकल्प करे, उसका अनुभव न करे, तो उससे तो कभी भी अर्थात् तीनलोक और तीनकाल में भी केवलज्ञान तो क्या, सम्यग्दर्शन की भी प्राप्ति नहीं हो सकती। विकल्प से भी पृथक् अपना जो उपयोगस्वभावी आत्मा है, उसमें स्थिर होने से केवलज्ञान और सम्यक्त्व दोनों की प्राप्ति होती है। इसप्रकार विकल्प में मात्र आत्मा और शरीर को पृथक्-पृथक् मानने से अनुभव नहीं होता। श्रद्धान में आत्मा को शरीर से बिल्कुल भिन्न मानने से और वह तीनलोक और तीनकाल में कभी भी एकरूप नहीं हुए—ऐसा श्रद्धान करने से और आत्मानुभव होने पर ही सम्यग्दर्शन होता है और उसी में स्थिरता करने से केवलज्ञान प्रगट होता है।

स्वयं ऐसा न समझे और पर को—देव-शास्त्र-गुरु को दोषी ठहरावे कि उन्होंने हमें क्यों नहीं समझाया—तो उनका तो कोई दोष है नहीं, जो कुछ दोष है वह तेरा ही है। आज तक तूने सत्य को समझने की जिज्ञासा ही नहीं की। शास्त्र और गुरु तो तुझे मार्ग बता सकते हैं कि यही वास्तविक मोक्षमार्ग है, सुख प्राप्त करने का उपाय है; परंतु यदि तू स्वयं उस रास्ते पर नहीं चलेगा तो देव-शास्त्र-गुरु तो तुझे हाथ पकड़कर मोक्ष ले जा नहीं सकते। इसलिये मोक्षमार्ग में चलना तो तुझे ही पड़ेगा; और यदि फिर भी तू नहीं चलेगा तो इसमें तेरा ही दोष है।

इसप्रकार आचार्यदेव ने महाअज्ञान विमोहित चित्तवाले जीव को यह समझाया कि मन, वाणी और शुभाशुभ विकारीभाव ही जब तेरे नहीं हैं तो शरीरादिक स्पष्ट पर हैं, वे तो तेरे कहाँ से हो सकते हैं ? अनादिकाल से यह जीव शरीरादिक को ही अपना मानता चला आ रहा है। इसलिये आचार्य प्रेरणा देते हैं कि भेदज्ञान के द्वारा शरीरादिक परपदार्थों से भिन्न जो चिदानंद परमात्मस्वरूप आत्मा है, उसको ही अपना मान, उसका ही अनुभव कर। ✱

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

(२) बंध :- अब बंध का निरूपण करते हैं। मिट्टी में से घड़ा होता है, वह पुद्गलद्रव्य की व्यंजनपर्याय है, वह कुम्हार के कारण नहीं है, जीव उसको जाननेवाला है। अज्ञानी जीव मेरे से हुआ ऐसा मानकर अभिमान करता है। मिट्टी स्वयं घड़ारूप हुई है। ज्ञान से अथवा इच्छा से वह नहीं हुई है।

कोई **प्रश्न** करता है कि चक्के को घुमाये तब घड़ा होता है न? निमित्त न हो, तब कहाँ से हो?

समाधान :- निमित्त न होता तब, यह प्रश्न ही कहाँ उठता है? निमित्त है सही, किंतु निमित्त है इसलिये घड़ा होता है, बनता है; यह बड़ा भ्रम है। घड़ारूपी नैमित्तिकदशा और कुम्हार चक्का वगैरह निमित्त में कालभेद नहीं है।

यदि निमित्त आने के बाद नैमित्तिक दशा मानने में आये तो दोनों के बीच कालभेद हो जाता है, लेकिन ऐसा है ही नहीं, दोनों एकसमय में हैं। निमित्त से नैमित्तिक अवस्था मानने में आये तो द्रव्य की पर्यायें पराधीन होने से द्रव्य भी पराधीन माना, वह बहुत बड़ा दोष है। बंध की पर्याय वह पुद्गलद्रव्य की है, पर के अस्तित्व के कारण नहीं, आत्मा उसका जाननेवाला देखनेवाला है—ऐसा भेदज्ञान करना, वह धर्म है।

यह गाथा पुद्गलद्रव्य की व्यंजनपर्याय का प्रतिपादन करती है। आत्मा ज्ञानस्वभावी है, इसप्रकार स्वयं को जानने से अजीव को यथार्थ जानता है। जड़ की पर्याय का अस्तित्व जड़ से है, आत्मा से नहीं है। भाषा पुद्गलद्रव्य की अवस्था है, आत्मा से नहीं होती यह बात कह चुके हैं, यहाँ बंध की व्याख्या चलती है। मिट्टी आदि का पिंडरूप होना वह पुद्गल की विभावव्यंजनपर्याय है, उसको आत्मा नहीं कर सकता है। लकड़ी लाख से नहीं जुड़ती है। मकान, लाख, लकड़ी, लड्डू आदि की स्कंधरूप अवस्था होना वह पुद्गल की व्यंजनपर्याय है, वह जीव के कारण नहीं है।

अज्ञानी को भ्रमणा होती है कि यदि जीव न होता तो ये मकानादि जिस तरह बनते? मकान जीव के कारण से नहीं होता, किंतु जीव निमित्त है इसलिये होता है, यह बात भी यहाँ नहीं कही है। यदि आत्मा के निमित्तपने से मकान, रोटी, लड्डू वगैरह बनते हों तो आत्मा का निमित्त निकल जाने के बाद भी वे पदार्थ लंबे समय तक बंधरूप अवस्थापने क्यों देखने में आते हैं? वे बंधरूप नहीं रहने चाहिये, कारीगर के चले जाने के बाद मकान वर्षों तक रहता है। रसोइन के उपस्थित न रहने पर लड्डू वगैरह बंधरूप अवस्थापन से देखने में आते हैं। यदि निमित्त के अस्तित्व से नैमित्तिक का अस्तित्व हो तो निमित्त चले जाने के बाद नैमित्तिक मकान, लड्डू वगैरह का अस्तित्व नहीं रहना चाहिये—लेकिन ऐसा तो दिखता नहीं है।

कारीगर आदि निमित्त थोड़े समय के लिये शुरु में दिखते हैं। अज्ञानी की अल्पकालीन दृष्टि होने के कारण निमित्त पर उसकी नजर जाती है, वह भ्रांति है। पुद्गल स्वयंसिद्ध बंधरूप अवस्था को प्राप्त करता है, ऐसा कहा है। यहाँ निमित्तपना बताया नहीं है। कारण कि निमित्त कुछ समय रहकर छूट (चला) जाता है, इसलिये उसको नहीं गिना है, पुद्गल को बंध कह दिया है। पुस्तक, सुवर्ण की डली (लगड़ी), रोटी आदि स्वतंत्र पुद्गल की व्यंजनपर्याय है, आत्मा उसका कर्त्ता-हर्त्ता नहीं है, ऐसी व्यवस्था कैसे हुई? ऐसे प्रश्न को अवकाश नहीं है। उसकी पर्याय उससे होती है, मैं उसका जाननेवाला हूँ, उस संबंधी मेरा ज्ञान भी मेरे से होता है; इसप्रकार समझकर भेदज्ञान करना वह धर्म है।

अब कर्म तथा नोकर्म (शरीर) रूप बंध है, वह जीव तथा पुद्गल के संयोग से है, उसकी बात करते हैं। ज्ञानावरणी दर्शनावरणी आठ कर्म तथा शरीर वह पुद्गलद्रव्य की अवस्था है। आत्मा ने कर्म बाँधे नहीं हैं, आत्मा शरीर का कुछ कर नहीं सकता है। कर्म और नोकर्मरूपबंध पुद्गल की विभावव्यंजनपर्याय है। आत्मा उसको जाननेवाला, देखनेवाला है, लेकिन कर्त्ता-हर्त्ता नहीं है। घट वगैरह के बंध से कर्म-शरीर वगैरह के बंध को पृथक् बताने का कारण यह है कि घड़ा मकानादि में निमित्त कुम्हार कारीगर वगैरह हैं, कुछ समय तक उपस्थित दिखते हैं; किंतु मकान जब तक रहता है, तब तक उसका निमित्त हमेशा उपस्थित नहीं दिखता है। जड़कर्म का नोकर्मरूपी अवस्था में निमित्तपना उपस्थित दिखता है, इसलिये कर्म और नोकर्म के बंध को पृथक् किया है। पहिले गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक के

सभी जीवों को शरीर और कर्म के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध रहा है। कर्म और शरीर की बंधरूप अवस्था पुद्गलद्रव्य के कारण होती है।

उस नैमित्तिक में जीव की संयोग सहायक हाजिरी है। इसप्रकार निमित्त-नैमित्तिक संबंध बना रहे, किंतु आत्मा कर्म की तथा शरीर की अवस्था को कर सकता है—ऐसा इसका अर्थ है ही नहीं। आत्मा ध्यान रखे तो शरीर निरोग रहे ऐसा नहीं होता है। शरीर को जैसा रहना हो वैसा रहता है। आत्मा उसका जाननेवाला, देखनेवाला है। और फिर खास बात यह है कि कर्मबंधन से भिन्न स्वयं का आत्मा शुद्ध है; ऐसी भावना से जो रहित है उसको अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से द्रव्यबंध है। यहाँ अज्ञानी को ही द्रव्यबंध है, ऐसा कहते हैं।

मैं दान करूँ अमुक व्रत करूँ तो कल्याण हो, ऐसी मान्यतावाले मिथ्यादृष्टि जीव को कर्म का बंध है। आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूपी है, चिदानंद ज्ञायक है, द्रव्य स्वयं मुक्तस्वरूप है; ऐसी जिसको खबर नहीं है, और जो वर्तमान पर्यायबुद्धि में और राग में लगा हुआ है, वह जीव कर्म से बँधता है। अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से बंध है। कर्म का आत्मा के प्रदेशों से नजदीक का संबंध है, मकानादि बाह्य पदार्थों के जैसे वह दूर नहीं, इसलिये असद्भूत को कर्म निमित्त है, इसलिये व्यवहार है। इसप्रकार अज्ञानी को अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से द्रव्यबंध है।

यहाँ अज्ञानी को द्रव्यबंध कहा है, ज्ञानी को द्रव्यबंध नहीं है। समयसार गाथा १०० में कहा है कि ज्ञानी नवीन कर्म में निमित्त नहीं है, अज्ञानी नवीन कर्म में निमित्त है। ज्ञानी जीव स्वभाव की अधिकतारूप परिणमता होने से अबंध है, कारण कि उसको भेदज्ञान वर्तता है। कर्म की पर्याय कर्म में है, मेरी पर्याय मेरे में है, इसप्रकार ज्ञानी समझता है, इससे वह अबंध है। वह अबद्धस्पष्टपने उपरिम राग और शरीर की एकता को छिन्न-भिन्न करनेवाला होने से उसे बंध नहीं है। कर्म नहीं, विकार नहीं, मैं तो ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ—ऐसी दृष्टि में अंतर्मुख होने से वह बंधता नहीं है। जिसको आत्मस्वभाव का भान बरतता है उसको भावबंध नहीं है, उस ही प्रकार द्रव्यबंध नहीं है। जिसको आत्म-स्वभाव का भान नहीं है, उसको भावबंध और द्रव्यबंध दोनों हैं।

अशुद्ध निश्चयनय से रागादिरूप परिणमन को भावबंध कहते हैं, फिर भी शुद्ध

निश्चयनय से वह भी पुद्गल का बंध है। रागादि परिणमन जीव की अवस्था में स्वयं के कारण होता है, इसलिये निश्चय भी वह विकारी परिणाम है, अतएव अशुद्ध कहा। इसप्रकार अशुद्ध निश्चयनय से देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग भी भावबंध है। धर्मीजीव को अबंध स्वभाव की मुख्यता होने से भावबंध नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम पर्याय में भूतार्थ होने पर भी, ज्ञानी को पर्याय पर दृष्टि नहीं होने के कारण और स्वभाव की दृष्टि होने के कारण व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम को अभूतार्थ कहा है। मूल वस्तुस्वभाव में वह नहीं है ऐसा कहने में आया है। अज्ञानी मानता है कि व्यवहाररत्नत्रय जितना ही मैं हूँ, और उससे मेरा कल्याण होगा। ऐसी दृष्टि से वह राग में अटका होने से उसको भावबंध होता है। उसको आंशिक अस्तित्व की रुचि होने से वह अंशीस्वभाव के अस्तित्व को भूल जाता है। कर्म के कारण राग होता है—ऐसा माननेवाला तो स्थूल मिथ्यादृष्टि है। लेकिन शुद्धस्वभाव को अधिक नहीं मानता, दया-दानादि में अटकता है, उसको अशुद्ध निश्चयनय से भावबंध कहा है।

जिस परिणाम से भावबंध होता है, वह परिणाम सम्यग्दर्शन का अथवा अबंध दशा का कारण नहीं होता। ज्ञानी समझता है कि राग और कर्म की मेरे त्रिकाली स्वभाव में नास्ति है, और मेरे त्रिकाली स्वभाव की राग और कर्म में नास्ति है। एक के अस्तित्व में दूसरे का अस्तित्व नहीं रहता। इसप्रकार यथार्थ ज्ञानस्वभाव का ज्ञान होने से ज्ञानी को भावबंध और द्रव्यबंध का भी ज्ञान होता है। कर्म-कर्म में है, आत्मा में नहीं है; ऐसा भेदज्ञान होने से स्व-पर प्रकाशक ज्ञान प्रगटता है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का अथवा व्यवहाररत्नत्रय का राग पर्याय में होने पर भी ज्ञानी को पर्यायबुद्धि नहीं होने से और स्वभाव की बुद्धि होने से वह परिणाम त्रिकालीस्वभाव में नहीं है, इसलिये उसको व्यवहार कहकर अभूतार्थ कहा है, उसीप्रकार राग और कर्म को एक गिनकर उसको शुद्ध निश्चयनय से पुद्गल का बंध कहा है।

कोई **प्रश्न** करता है कि विकार द्रव्य और गुण में नहीं है, तब फिर विकार कर्म के कारण से होता होगा?

समाधान - 'नहीं', विकार कर्म के कारण से नहीं है, वह आत्मा की पर्याय में होता है। किंतु विकार जितना ही मैं हूँ ऐसा स्वीकार करनेवालों की दृष्टि कहाँ जायेगी? 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसी अंतर्दृष्टि के अभाव के कारण और विकार के अंश को स्वीकार करनेवाला होने से वह

जीव स्वभाव को नहीं मानेगा, किंतु संयोग को मानेगा। ''इतना करना चाहिये, हमने इतना पुण्य किया, इतने कर्म बाँधे, और उसका यह फल मिला''—इसप्रकार अज्ञानी की रुचि विकार, कर्म और संयोग पर जाती है, इससे वह संसार में घूमता है। व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम को ही देखनेवाला पुदगल को मानता है, किंतु स्वभाव को नहीं मानता है। दया-दान की बात आये, उपवास करने की बात आये, तो अज्ञानी को इसमें आनंद आता है, और मिथ्यात्व का सेवन कर निर्जरा हुई ऐसा मानता है। किंतु आत्मा ज्ञायक है, कर्म के विकार से रहित है, ऐसी समझ करने में अपूर्व पुरुषार्थ है, वह उसको सूझता नहीं है। जो स्वयं के ज्ञान में वीर्य का महत्त्व नहीं लाता वह आत्मा की समझ किसप्रकार कर सकता है? और निश्चय आत्मा के भान बिना देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का रागरूप व्यवहार व्यर्थ है। जिसको गृहीत मिथ्यादर्शन है, उसके निश्चय और व्यवहार दोनों खोटे हैं, उसकी तो बात नहीं है; किंतु सच्चे देव-शास्त्र-गुरु सनातन जैनमार्ग में कहे हैं, उसप्रकार माने उनके प्रति राग की मुख्यता किसको होती है? जिसका स्वभाव गौण वरतता है उसको और उस प्रकार के जीव को भावबंध होता है। और वह पुद्गलद्रव्यबंध की एकता करता है, किंतु उसको शुद्धस्वभाव के साथ एकता नहीं होती है। इस गाथा में समयसार की गाथा ११ का न्याय दिया है।

व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है। भूतार्थ के आश्रित जीव सम्यग्दृष्टि होता है—इसमें यह सार है। यहाँ बन्ध का अधिकार है। बन्ध के जाननेवाले को बंधरूप नहीं है। बंध और आत्मा की एकताबुद्धिवाला बंध के स्वरूप को नहीं जान सकता। विकार और कर्म मेरे में नहीं हैं, मैं तो ज्ञायक हूँ, ऐसी स्वभावबुद्धि वाला स्वयं को जानने से बंध को यथार्थ जान सकता है। धर्मी जीव समझता है कि विकार, विकार का फल, कर्म और पैसा तथा संयोग वगैरह हैं, मैं उनका जाननेवाला हूँ; उनका मैं करनेवाला नहीं हूँ। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव आदि की दृष्टि वर्तमान पुण्य के भाव पर नहीं थी। तब फिर पूर्व में पुण्य किये थे और उनके फल में ये संयोग मिले—ऐसा मानकर उनके स्वामी वे नहीं होते हैं।

जो जीव रुपया वगैरह को अपना मानते हैं, वे आत्मा के अस्तित्व को पृथक् नहीं मानते हैं। रुपया वगैरह पुद्गलद्रव्य की व्यंजनपर्याय है, यदि वह तेरे से हो तो तेरे चले जाने से उनको भी चला जाना चाहिये, लेकिन ऐसा नहीं होता। स्वयं के कारण पैसा आदि का होना मानना वह

तो बड़ी भूल है। किंतु विकार स्वयं के कारण है ऐसा भी धर्मीजीव नहीं मानता है। कमजोरी से होनेवाले विकार का तेरे स्वभाव में अभाव है; तब लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र तो बहुत दूर हैं। एकसमय के संयोग के अस्तित्व को, कर्म के अस्तित्व को स्वयं का माने, उसको त्रिकालज्ञायक की रुचि नहीं है, उसको धर्म नहीं होता है।

जिसको ज्ञायक की रुचि है, उसको कमजोरी से होनेवाले विकार को अभूतार्थ गिनकर उस भावबंध को पुद्गल में डाल दिया है (पुद्गल कह दिया है)। बंध की व्याख्या में अबंध भगवान को सिद्ध किया है। भावबंध तथा द्रव्यबंध से आत्मा को पृथक् किये बिना भावबंध अथवा द्रव्यबंध का यथार्थ ज्ञान नहीं होता है। शुद्धचैतन्य की दृष्टि में भावबंध और पुद्गलबंध आत्मा में से नहीं आया है ऐसा ज्ञान करे, उसको मुक्ति की झनकार बजे बिना नहीं रहती।

[क्रमशः]

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न- 'मैं शुद्ध हूँ' इसका अर्थ क्या?

उत्तर- नर-नारकादि जीव के विशेष, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष—इन नव तत्त्वों से एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायकभाव अत्यंत भिन्न होने से 'मैं शुद्ध हूँ'। साधक-बाधक की पर्याय से आत्मा को अत्यंत भिन्न कहा। शरीरादि से तो अत्यंत भिन्न है ही, पुण्य-पापादि से भी अत्यंत जुदा ही है, इसके अतिरिक्त संवर-निर्जरा और मोक्ष की शुद्ध निर्मल पर्याय के व्यवहारिक भावों से भी मैं एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायकभावरूप होने के कारण अत्यंत भिन्न होने से 'शुद्ध हूँ'। यहाँ समयसार की गाथा ३८ में तो संवर,

निर्जरा, मोक्ष की शुद्ध निर्मल पर्याय के व्यवहारिक भावों से भी आत्मा को अत्यंत भिन्न कहकर दिगंबर संतों ने अंतर के रहस्य को व्यक्त कर दिया है। ऐसी बात अन्यत्र है ही नहीं। आहाहा! जगत का भाग्य है कि ऐसी वाणी अवशेष रह गयी।

प्रश्न– सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञानी जीव तुरंत ही मुनि क्यों नहीं बन जाते?

उत्तर– आत्मार्थी हठ नहीं करते अर्थात् तुरंत ही कार्य हो जाने की आकुलता नहीं करते। स्वभाव में हठ काम नहीं आता। मार्ग तो सहज है; हठ से, उतावली से, अधैर्य से मार्ग उपलब्ध नहीं होता। सहज मार्ग पर पहुँचने के लिये धैर्य और विवेक अपेक्षित है। ऋषभदेव भगवान जैसे महान पुरुष को ८३ लाख पूर्व तक चारित्रदशा-मुनिदशा नहीं हुई और भरत चक्रवर्ती जैसे को भी ७७ लाख पूर्व राज्यपद और ६ लाख पूर्व चक्रीपद रहा। यह जानते थे कि अंतरंग में डुबकी लगानेरूप एकाग्रता के चारित्र का पुरुषार्थ अभी नहीं है, इसलिये हठ नहीं करते थे। कुछ जीवों को ऐसा लगता है कि सम्यग्दर्शन होने पर चारित्र नहीं लिया तो किस काम का? किंतु भाई! अंदर स्वभाव में हठ काम नहीं आता, सहज पुरुषार्थ से अंतर-रमणता होती है। यह बात विवेक-विचारसहित वस्तुस्वभाव ध्यान में रखकर समझने जैसी है।

प्रश्न– राग से छुटकारा कैसे मिले?

उत्तर– एकांत दुःख के जोर से राग से छुटकारा मिल जाये—ऐसा बनता नहीं। हाँ, द्रव्य दृष्टि के जोर से राग से छुटकारा मिल सकता है। आत्मा को पहिचाने बिना, जाने बिना जावें कहाँ? आत्मा को जाना हो, उसका अस्तित्व ग्रहण किया हो, तो राग से छूटकर आत्मा में लीन हो सकता है।

प्रश्न– क्या प्रत्येक पर्याय निरपेक्ष और स्वतंत्र है?

उत्तर– प्रत्येक पर्याय सत् है-स्वतंत्र है, उसे पर की अपेक्षा नहीं। राग का कर्त्ता तो आत्मा नहीं, किंतु राग का ज्ञान कहना यह भी व्यवहार है तथा ज्ञानपरिणाम को आत्मा करता है—ऐसा कहना भी व्यवहार है। वास्तव में तो उस समय की ज्ञान-पर्याय षटकारक से स्वतंत्र हुई है।

प्रश्न– कृपया थोड़ा और स्पष्ट विस्तार से समझाइये? हम तो विस्ताररुचि वाले हैं।

उत्तर– सुनो! आत्मा कर्त्ता होकर पर्याय को करता है—ऐसा कहने में आता है; किंतु वास्तव में तो पर्याय स्वयं षट्कारक की क्रियारूप से स्वतंत्र परिणमन करती है। भूतार्थ स्वभाव

का आश्रय करने की बात आवे; वहाँ पर्याय स्वयं षट्कारक से स्वतंत्र कर्त्ता होकर आश्रय करती है-लक्ष करती है। वीतरागी पर्याय का, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय का लक्ष-आश्रय त्रिकालीद्रव्य है; परंतु वह लक्ष पर्याय स्वयं षट्कारक से स्वतंत्ररूपेण कर्त्ता होकर करती है-परिणमती है। पर्याय अहेतुक सत् है न! विकारीपर्याय भी पर की अपेक्षा बिना-परनिरपेक्ष अपने ही षट्कारक से स्वतंत्रतया परिणमन करती है—ऐसा पंचास्तिकाय गाथा ६२ में कहा है। विशेष क्या कहें—पर्याय विकारी हो अथवा अविकारी, वह तो प्रतिसमय स्वयं षट्कारक की क्रिया से स्वतंत्र ही परिणमन करती है—उत्पन्न होती है। आहाहा! स्वतंत्रता की ऐसी बात जिसके श्रद्धान में बैठ जाये—जम जाय, उसके कर्मों का भुक्का उड़ जाता है। परंतु जिसकी योग्यता हो, संसार का किनारा निकट आ गया हो, उसी को यह बात हृदयस्थ होती है। विरले ही ऐसी बात सुनने और समझनेवाले होते हैं—उनकी बहुलता नहीं होती।

प्रश्न- सामान्यज्ञान और विशेषज्ञान में भेद और उनका फल बतलाये हुए स्पष्ट कीजिए कि सम्यग्दृष्टि इनमें से अपना ज्ञान किसे मानता है?

उत्तर- विषयों में एकाकार हुए ज्ञान को विशेषज्ञान अर्थात् मिथ्याज्ञान कहते हैं और उनका लक्ष छोड़कर अकेले सामान्यज्ञान-स्वभाव के अवलंबन से उत्पन्न हुए ज्ञान को सामान्यज्ञान अर्थात् सम्यग्ज्ञान कहते हैं। ज्ञानस्वभाव में एकाकार होकर प्रगट हुए ज्ञान को सामान्यज्ञान-वीतरागीज्ञान कहते हैं, उसी को जैनशासन अथवा आत्मानुभूति कहते हैं। सामान्यज्ञान में आत्मा के आनंद का स्वाद आता है। विशेषज्ञान अर्थात् इंद्रियज्ञान में आत्मा के आनंद का स्वाद आता नहीं; अपितु आकुलता और दुःख का स्वाद आता है। परद्रव्य का अवलंबन लेकर जो ज्ञान होता है, वह विशेषज्ञान है। भगवान की वाणी सुनकर जो ज्ञान हुआ वह इंद्रियज्ञान है—विशेषज्ञान है; वह आत्मा का ज्ञान—अतीन्द्रियज्ञान-सामान्यज्ञान नहीं। ज्ञानी को आत्मा का ज्ञान हुआ है, उस सामान्यज्ञान को ज्ञानी अपना ज्ञान जानता है और पर को जानता हुआ इंद्रियज्ञान जो अनेकाकाररूप परसत्तावलंबी ज्ञान होता है, उसको अपना ज्ञान मानता नहीं। जैसे परज्ञेय को अपना मानता नहीं वैसे ही पर के ज्ञान को भी अपना ज्ञान मानता नहीं। जिसमें आनंद का स्वाद आता है ऐसे आत्मज्ञान को ही अपना ज्ञान मानता है। ❋

समाचार दर्शन

पूज्य कानजीस्वामी की जन्म-ज्यंती सानंद संपन्न

बंबई (महा०) :- आध्यात्मिक संत पूज्य कानजीस्वामी दिनांक १४-४-७९ से २९-४-७९ तक बंबई पधारे। धोबी तालाब पर बने विशाल एवं अलंकृत पांडाल में प्रातः ८ से ९ तक दोपहर ३ से ४ तक आपके आध्यात्मिक प्रवचन प्रतिदिन चलते थे। रात्रि को 'नीलांबर' में तत्त्वचर्चा भी प्रतिदिन ७ से ८ तक चलती थी। स्थानीय लोगों के अतिरिक्त अनेक प्रांतों से पधारे हजारों आत्मार्थी बंधुओं ने धर्म लाभ लिया। लगभग दस हजार जनता प्रतिदिन प्रवचन का लाभ लेने आती थी।

२८ अप्रेल को पूज्य स्वामीजी का ९०वाँ जन्मदिवस उल्लासपूर्वक बनाया गया। ब्रह्मचारी यशपालजी एम०ए० बाहुबली, पंडित लालचंदभाई मोदी, पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, साहू श्रेयांसप्रसादजी जैन, श्री धीरूभाई, पंडित रतनचंदजी भारिल्ल, पंडित भरत चक्रवर्ती न्यायतीर्थ मद्रास आदि तथा घाटकोपर, मलाड, दादर एवं मुंबई मुमुक्षु मंडलों के प्रमुखों ने पूज्य स्वामीजी द्वारा वर्तमान समय में हुई धर्म प्रभावना के प्रति आभार व्यक्त करते हुए उनके दीर्घ जीवन की कामना की। इस अवसर पर लगभग १५ हजार रुपये का सत्साहित्य बिका एवं आत्मधर्म हिन्दी के १९ आजीवन तथा ५६ वार्षिक और गुजराती के लगभग १५० ग्राहक बने। जैनपथ प्रदर्शक के भी अनेक ग्राहक बने।

इस प्रसंग पर सोनगढ़ ट्रस्ट को ज्ञान प्रचार के लिये एक लाख पैंसठ हजार के वचन प्राप्त हुए। आचार्य कुंदकुंद के समयसारादि पाँचों परमागमों पर पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों को छपाने के लिये सात लाख रुपये का फंड बनाया गया। ध्यान रहे उक्त कार्यक्रमों को संपन्न करने के लिये इसके पूर्व लगभग तीन लाख की राशि प्राप्त हुई थी।

इस अवसर पर पधारे डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के २५ अप्रेल से २९ अप्रेल तक प्रातः ९.३० से १०.३० तक प्रवचन मंडप में तथा रात्रि को सीमंधर जिनालय में क्रमबद्धपर्याय पर गंभीर प्रवचन हुए। दिनांक २८-४-७९ को डॉ० भारिल्लजी ने क्रमबद्धपर्याय पर गुरुदेवश्री का इंटरव्यू भी लिया।

इस अवसर पर घाटकोपर भजन मंडली द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम बहुत ही रोचक रहे। सभी कार्यक्रमों से समाज ने धर्म लाभ लिया।

यहाँ से पूज्य स्वामीजी एक सप्ताह के लिये भावनगर पधार गये हैं। वहाँ से आप सोनगढ़ पधारेंगे। **— अखिल बंसल**

जयपुर (राज०) :- २८ अप्रेल ७९ को स्थानीय टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों द्वारा पूज्य स्वामीजी का ९० वाँ जन्मदिवस उत्साहपूर्वक मनाया गया। इस अवसर पर प्रातः ७ से ७.३० तक सामूहिक पूजन, ८ से ९ तक टेप द्वारा स्वामीजी का प्रवचन, सायंकाल ७ से ७.३० तक जिनेन्द्र भक्ति हुई तथा रात्रि ८ से १० तक प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री श्री तेजकरणजी डंडिया की अध्यक्षता में आयोजित सभा में अनेक वक्ताओं ने अपने-अपने विचार व्यक्त करते हुए विनयांजलि सादर समर्पित की। सभा का संचालन महाविद्यालय के छात्र श्री कैलाशचंदजी 'अचल' ने किया। **—जतीशचंद जैन**

आगरा (उ०प्र०) :- पूज्य कानजीस्वामी के ९०वें जन्मदिवस पर यहाँ विशाल शोभायात्रा निकाली गई जो नाई की मंडी स्थित नये मंदिर में एक सभा के रूप में परिवर्तित हो गई। सभा की अध्यक्षता पंडित ख्यालीरामजी ने की। सभा में पंडित जीवनलालजी, श्री सौभाग्यमलजी पाटनी तथा श्री पदमचंदजी सर्राफ आदि ने पूज्य स्वामीजी के प्रति श्रद्धा प्रगट करते हुए अपने-अपने भाव व्यक्त किये। महिलाओं की ओर से संगीत-भजन आदि का कार्यक्रम आयोजित किया गया। मिष्ठान वितरण भी किया गया। **— जगदीश जैन**

मलकापुर (महा०) :- पंडित रमेशभाई जटाले की अध्यक्षता में पूज्य स्वामीजी की ९०वीं वर्षग्रंथि मनायी गयी। स्थानीय विद्वानों ने पूज्य स्वामीजी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कृतज्ञता ज्ञापित की।

विदिशा (म०प्र०) :- पूज्य स्वामीजी की ९०वीं मंगल जन्म-जयंती के दिन स्टेशन जैन मदिर में एक सभा का आयोजन किया गया। विभिन्न वक्ताओं ने पूज्य गुरुदेव के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए उनके दीघ्र जीवन की कामना की। पूज्य स्वामीजी के टेप द्वारा प्रवचन सुनकर समाज ने तत्त्व लाभ लिया। **— राजेन्द्रकुमार जैन**

महावीर जयंती सानंद संपन्न

भोपाल (म०प्र०) :- दिनांक ८-४-७९ से १०-४-७९ तक विविध कार्यक्रमों के साथ महावीर जयंती समारोह सानंद संपन्न हुआ। सुभाषचौक पर आयोजित सभा में मध्यप्रदेश के अनेक मंत्री, पंडित बाबूभाई मेहता तथा स्वामी सत्यभक्त पधारे। पंडित बाबूभाई के ओजस्वी भाषण से उपस्थित जनसमुदाय बहुत प्रभावित हुआ। लगभग दो हजार का सत्साहित्य बिका। **—बादामीलाल जैन**

रतलाम (म०प्र०) :- यहाँ महावीर जयंती के अवसर पर स्थानीय समाज के विशेष आमंत्रण पर डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल पधारे। आपने विशाल आमसभा में 'भगवान महावीर और अहिंसा' पर अपने विचार व्यक्त किये। आपके सरल, सुबोध और रोचक शैली से युक्त विचारों को सुनकर जैन-अजैन सभी बहुत प्रभावित हुए। सभा की अध्यक्षता बैरिस्टर अब्बासी ने की। इसके अतिरिक्त मुनि भद्रसागरजी के सान्निध्य में डॉ० भारिल्लजी के मोक्षमार्गप्रकाशक पर ७ प्रवचन हुए, जिससे बहुत अच्छी धर्म प्रभावना हुई। **—ललित पटौदी**

जबेरा (म०प्र०) :- अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा के तत्त्वावधान में महावीर जयंती विविध कार्यक्रमों के साथ मनायी गयी। इस अवसर पर आयोजित सभा में विभिन्न वक्ताओं ने भगवान महावीर के जीवन और सिद्धांतों पर प्रकाश डाला। ब्लाक अध्यक्ष श्री राजकुमारजी ने फैडरेशन द्वारा संचालित प्याऊ का उदघाटन किया। **— विनोद सिंघई**

अहमदाबाद (गुजरात) :- स्थानीय उस्मानपुरा में महावीर जयंती के अवसर पर प्रभातफेरी, सामूहिक पूजन तथा सभा का आयोजन किया गया। श्री डाह्याभाई जज साहब तथा अन्य अनेक वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किये। इसी समय नवरंगपुरा में जिनमंदिर बनवाने की घोषणा की गई, जिसके लिये सत्तर हजार रुपये की बोलियाँ हुईं। **— सुमतिलाल एस० शाह**

मौ (म०प्र०) :- महावीर जयंती के अवसर पर सोनगढ़ से पंडित झम्मकलालजी पधारे। २० दिन तक तीनों समय आपके सारगर्भित प्रवचन हुए। विभिन्न कार्यक्रमों के साथ महावीर जयंती भी मनायी गयी। इसी अवसर पर युवा फैडरेशन की शाखा का गठन भी किया गया। **— जिनेशचंद जैन**

फुटेरा (म०प्र०) :- स्थानीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला के छात्र-छात्राओं ने

भगवान महावीर की जन्म-जयंती बड़े उत्साह से मनायी। सभा का आयोजन भी किया गया।

— ऋषभकुमार पुजारी

सिरसागंज (उ०प्र०) :- यहाँ महावीर जयंती धूमधाम से मनायी गयी। प्रभातफेरी, गजरथयात्रा एवं सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। इस अवसर पर विदिशा से जैनपथ प्रदर्शक के संपादक पंडित रतनचंदजी भारिल्ल ने सभा को संबोधित करते हुए भगवान महावीर की अहिंसा की विशद् व्याख्या की। भारिल्लजी के मंदिरजी में दो प्रवचन भी हुए जिससे समाज लाभान्वित हुई। **— अशोककुमार**

विदिशा (म०प्र०) :- यहाँ दिनांक ४-८-७९ से १०-४-७९ तक महावीर जयंती समारोह का भव्य आयोजन विविध कार्यक्रमों के साथ संपन्न हुआ। इस अवसर पर श्रीमती सविता वाजपेयी, लोकनिर्मामण मंत्री, मध्यप्रदेश शासन के आतिथ्य में विशाल आमसभा आयोजित की गई। सभा में श्री राघवजी, संसद सदस्य सहित अनेक वक्ताओं ने भगवान महावीर के मानव कल्याणकारी उपदेशों पर प्रकाश डाला। सभा का संचालन डॉ० आर० के० जैन ने किया। **— विद्यानंद**

भोपाल (म०प्र०) :- यहाँ अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में भगवान महावीर का २५७७वाँ जन्मदिवस उत्साहपूर्वक मनाया गया। डॉ० हमीद कुरेशी, विधायक की अध्यक्षता में आयोजित समारोह में मुख्य अतिथि श्रीमती जयश्री बनर्जी, मंत्री, समाज कल्याण विभाग, म०प्र० शासन थीं तथा मुख्यवक्ता डॉ० रविप्रकाश माथुर, उपकुलपति, भोपाल विश्वविद्यालय थे। **— अभय जैन**

मुथोक चुंग (नागालैंड) :- महावीर जयंती के अवसर पर प्रभातफेरी निकाली गयी। इस अवसर पर भगवान महावीर स्कॉलरशिप कमेटी की स्थापना की गयी। **— महेन्द्र जैन**

बसमत (महा०) :- महावीर जयंती के प्रसंग पर प्रभातफेरी, पूजन तथा पंडित नेमीचंदजी डोंगरगाँव वालों के व्याख्यान का आयोजन किया गया। श्री हरकचंदजी गंगवाल द्वारा एक सप्ताह का शिक्षण-शिविर आयोजित किया गया, जिससे समाज ने तत्त्वलाभ लिया।

— रामभाऊ राजाराम महाजन

पंडित ज्ञानचंदजी द्वारा धर्मप्रभावना

विगत दिनों पंडित ज्ञानचंदजी उदयपुर तथा निकटवर्ती अन्य ग्रामों में पधारे। दिनांक ८-४-७९ से १०-४-७९ तक उदयपुर, ११ से १३ तक भीलवाड़ा, १४ को निम्बाहेड़ा तथा बीनोता, १५ को बोहेड़ा एवं लूणदा, १६ एवं १७ को भीण्डर, १९ को कानोड़, २० को कुरावड़ तथा २२ को साकरोदा आदि स्थानों पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। १५ दिन के प्रवास में आपको १३ स्थानों से कुंदकुंद कहान दि० जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट के लिये पुरानी स्वीकृतियों की ४७,८९८ रुपये की प्राप्ति हुई तथा २९,५११ रुपये के नये वचन प्राप्त हुए। सभी स्थानों पर आपके प्रवचनों से विशेष धर्मप्रभावना हुई।

— माणिकलाल आर० गाँधी

मंदसौर में वेदी-प्रतिष्ठा

मंदसौर (म०प्र०) :- दिनांक ११-५-७९ से १३-५-७९ तक स्थानीय गौतमनगर में श्री सीमंधरस्वामी जिनबिम्ब वेदी-प्रतिष्ठा एवं कलश ध्वजारोहण महोत्सव का कार्यक्रम होना निश्चित हुआ है। प्रतिष्ठा विधान की क्रिया ब्रह्मचारी हेमराजजी भोपाल तथा पंडित गेंदालालजी शास्त्री बूँदी के सान्निध्य में संपन्न होगी। इस अवसर पर पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, पंडित हिम्मतभाई जोबालिया बम्बई, तथा पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा आदि विद्वानों के प्रवचनों का लाभ भी प्राप्त होगा।

— मंत्री, दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल

शिक्षण-शिविर से धर्मप्रभावना

शेडवाल (कर्नाटक) :- यहाँ दिनांक ११-४-७९ से १८-४-७९ तक शिक्षण-शिविर सानंद संपन्न हुआ। शिविर का संचालन डॉ० प्रियंकर यशवंत जैन एवं ब्रह्मचारी यशपालजी ने किया। शिविर का समापन करते हुए मुनिश्री वीरसागरजी ने कहा कि—"शरीर का ज्वर मापने के लिये जो थर्मामीटर होता है परंतु इस शिविर से मुझे जिस आनंद की अनुभूति हुई उसे नापने के लिये मेरे पास कोई थर्मामीटर नहीं है।" डॉ० प्रियंकरजी के निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार, सम्यग्दर्शन आदि विषयों पर प्रवचन हुए जिससे समाज की अनेक भ्रांतियाँ दूर हुई।

२ जून से भिलवड़ी (महा०) में भी शिक्षण-शिविर का आयोजन किया जा रहा है।

— एम० वी० पाटिल

श्री नंदीश्वरद्वीप प्रतिष्ठा-समारोह संपन्न

विदिशा (म०प्र०) :- यहाँ दिनांक ७ अप्रेल तक श्री नंदीश्वरद्वीप वेदी-प्रतिष्ठा का आयोजन श्री शांतिनाथ जिनालय में भक्ति आदि विविध कार्यक्रमों के साथ सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर अध्यात्मप्रवक्ता पंडित बाबूभाई मेहता के प्रवचन विशेष आकर्षण के केंद्र रहे। पंडित ज्ञानचंदजी के प्रवचनों का लाभ भी समाज को मिला। प्रतिष्ठाविधि पंडित बाबूलालजी 'सौजन्य' द्वारा संपन्न की गयी।

इस प्रतिष्ठा पर हुई इकत्तीस हजार पाँच सौ रुपयों की आय मंदिरजी ट्रस्ट में न रखकर समाज द्वारा तीर्थक्षेत्रों के जीर्णोद्धार एवं ज्ञान प्रचार हेतु श्री कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को समर्पित कर दी गई। इसी राशि में से ८००० रुपये दिगम्बर जैन मंदिर विलासपुर के लिये दिये गये। कार्यक्रम के समापन के अवसर पर श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन ने सत्साहित्योद्धारक फंड में से प्रतिवर्ष २१००) रुपये सोनगढ़ और टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर से प्रकाशित साहित्य के मूल्य को कम करने में प्रदान करने की घोषणा की। **— विद्यानंद**

अंबाला छावनी (हरियाणा) :- स्थानीय महेशनगर बस्ती में १ मार्च से ५ मार्च ७९ तक नवनिर्मित चैत्यालय में विविध कार्यक्रमों के साथ वेदी-प्रतिष्ठा का कार्यक्रम सानंद संपन्न हुआ। प्रतिष्ठा की कार्यविधि पंडित सरमनलालजी 'दिवाकर' सरधनावालों ने संपन्न करायी।

— सुमतप्रसाद जैन

वली (राज०) :- यहाँ दिनांक ३-५-७९ से ९-५-७९ तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव संपन्न होने जा रहा है। इस अवसर पर पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, पंडित

एक और इन्टरव्यू : पूज्य कानजी स्वामी से

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के जन्मदिवस पर दिनांक २८-४-७९ को बम्बई में आज के बहुचर्चित विषय 'क्रमबद्धपर्याय' पर पूज्य स्वामीजी से आत्मधर्म के संपादक डॉ० भारिल्लजी ने चर्चा के समय एक इन्टरव्यू लिया था जिसे आत्मधर्म के पाठकों के लाभार्थ आगामी अंकों में यथावसर प्रकाशित किया जायेगा। **— प्रबंध संपादक**

ज्ञानचंदजी विदिशा तथा अनेक त्यागीगण एवं विद्वान पधार रहे हैं। साधर्मी भाई अधिक से अधिक संख्या में पधारकर धर्मलाभ लें। इसके विस्तृत समाचार अगले अंक में दिये जायेंगे।

— उग्रसेन बंडी

जामनगर (गुज०) :- पूज्य स्वामीजी के कर-कमलों द्वारा दिनांक ८-४-७९ को आचार्य कुंदकुंद के चरणचिह्न की स्थापना की गई। इस अवसर पर पूज्य स्वामीजी की उपस्थिति में चौसठ ऋद्धि मंडल विधान का आयोजन ३ से ८ अप्रेल तक स्व० वीरजीभाई ताराचंदजी वारियाना परिवार की ओर से किया गया। स्वामीजी के तात्त्विक प्रवचनों से समाज अत्यंत प्रभावित हुई।

मोरबी (गुज०) :- राजकोट में धर्मामृत की वर्षा करते हुए पूज्य स्वामीजी २९-३-७९ से २-४-७९ तक यहाँ महावीर दिगंबर जिन मंदिर के रजतजयंती महोत्सव में पधारे। इस अवसर पर विशाल रथयात्रा निकाली गयी। प्रतिदिन सामूहिक पूजन, पूज्य स्वामीजी के प्रवचन, जिनेन्द्र भक्ति तथा रात्रि में तत्त्वचर्चा से समाज ने तात्त्विक लाभ लिया। राष्ट्रीयशाला के विद्यार्थियों ने आकर्षक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। सत्साहित्य की बिक्री हुई एवं आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बनाये गये।

जयपुर (राज०) :- दिनांक १३-४-७९ से २७-४-७९ तक पंडित कैलाशचंदजी बुलंदशहरवालों की कक्षाओं का आयोजन टोडरमल स्मारक भवन में किया गया। तीनों समय की कक्षाओं से स्थानीय बापूनगर की समाज एवं टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों ने लाभ लिया। आपने एक-एक समय के लिये श्री दिगम्बर जैन मंदिर सीबाड़ व श्री दिगम्बर जैन बड़ामंदिर में पधारकर स्थानीय समाज को भी लाभान्वित किया। अंत में सभी ने आपका आभार प्रकट किया।

— महावीर पाटिल

आवश्यकता है— एक ऐसे विद्वान की जो स्थानीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला में धर्म पढ़ा सके। श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड जयपुर द्वारा प्रशिक्षित अध्यापक को प्राथमिकता। वेतन योग्यतानुसार।

— डॉ० अरुणकुमार जैन, वीतराग-विज्ञान पाठशाला, कुशलगढ़ (राज०) ३२७८०१

आवश्यक सूचनाएँ

(१) भारतवर्षीय दिगंबर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी की प्रबंधकारिणी के सदस्यों की बैठक १३ मई १९७९ को श्री महावीरजी क्षेत्र पर होगी। **— जयचंद डी० लोहाड़े**

(२) श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड, ए-४, बापूनगर, जयपुर की ग्रीष्मकालीन परीक्षाऐं दिनांक १६ एवं १७ जुलाई ७९ को ली जावेंगी। इस हेतु १८ मई तक प्रवेश फार्म स्वीकार किये जायेंगे तथा १० पैसे प्रतिछात्र विलंब शुल्क सहित २८ मई तक स्वीकार किये जा सकेंगे। जिनके पास प्रवेश फार्म न हों वे नि:शुल्क मंगा लें तथा उन्हें भरकर शीघ्र भेजें। **— हेमचंद जैन**

(३) श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर के कार्यक्रमों के अंतर्गत दिनांक १२-७-७९ से २४-८-७९ तक पंडित लालचंदभाई मोदी, बम्बई के पधारने की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। लाभार्थ पधारनेवाले आत्मार्थीजन नोट कर लें।

आवश्यकता है— श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर को एक ऐसे विद्वान की जो महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के कार्य का पूरक हो। उनके समस्त कार्य में पूरी तरह सहयोग कर सके और न्याय व अध्यात्म ग्रंथों के पठन-पाठन के साथ-साथ वीतराग-विज्ञान परीक्षाबोर्ड के पाठ्यक्रम को अच्छी तरह पढ़ा सके। पूज्य कानजी स्वामी के विचारों से सहमत आध्यात्मिकरुचि-संपन्न गंभीर प्रकृति के व्यक्ति को प्राथमिकता दी जावेगी। निवास आदि सुविधाओं के साथ वेतन योग्यतानुसार दिया जावेगा।

— मंत्री, पंडित टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय
ए-४-, बापूनगर, जयपुर-३०२००४

आध्यात्मिक प्रवचनों का विशेष आयोजन

जयपुर— श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के वार्षिक कार्यक्रम के अंतर्गत दिनांक २५-५-७९ से ५-६-७९ तक पंडित शशिभाई भावनगर एवं पंडित रतनचंदजी भारिल्ल विदिशा के प्रवचनों का आयोजन श्री टोडरमल स्मारक भवन में किया गया है।

बाहर से पधारनेवाले बंधुओं के लिये नि:शुल्क आवास तथा सशुल्क भोजन की व्यवस्था है। स्थानीय लोगों के लिये भी यथासंभव उक्त व्यवस्था की जावेगी।

— मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ध्यान दें..... कहीं ऐसा न हो.....

ध्यान रहे अजमेर में ३ जून से २२ जून तक होनेवाला शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर अब ७ जून से २६ जून तक होगा।

कहीं ऐसा न हो कि आप ३ जून को ही अजमेर पहुँच जायें और आपको परेशानी उठानी पड़े।

अजमेर में उर्स मेले के कारण भीड़भाड़ में शिविर में आनेवाले मुमुक्षुओं को यात्रा में असुविधा न हो, इसलिये तिथि में परिवर्तन किया गया है।

शिविर के उद्घाटन के अवसर पर राजस्थान के स्वास्थ्यमंत्री माननीय त्रिलोकचंदजी जैन और दीक्षांत समारोह के अवसर पर दिगम्बर जैन महासमिति के अध्यक्ष माननीय साहू श्रेयांसप्रसादजी जैन के पधारने की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। इनके अतिरिक्त सर्वश्री सेठ रतनलालजी गंगवाल कलकत्ता, सेठ पन्नालालजी गंगवाल कलकत्ता, सेठ पदमचंदजी आगरा, पंडित सेठ जवाहरललाजी विदिशा आदि अनेक गणमान्य सज्जन भी पधारेंगे।

इसी अवसर पर श्री कुंदकुंद कहान दिगम्बर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट, श्री वीतराग-विज्ञान-विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड एवं भारतवर्षीय वीतराग विज्ञान पाठशाला समिति की मीटिंगें भी रखी गई हैं। दिगंबर जैन महासमिति को भी आमंत्रित किया गया है।

अब आप ६ जून को शाम तक अजमेर पहुँचे।

पाठकों के पत्र

उज्जैन (म०प्र०) से श्री पांडे परमेष्ठीदासजी जैन लिखते हैं: —

क्रमबद्धपर्याय; मैंने यह विषय समझ के परे समझकर छोड़ ही दिया था। उसमें सदैव यही जान पड़ा कि पुरुषार्थ को धक्का दिया जा रहा है। परंतु जब से इस विषय पर डॉ० भारिल्लजी के संपादकीय लेख पढ़े सब समझ में आने लगा। अब तो आगे पढ़ने की अभिलाषी बनी रहती है।

कोटा (राज०) से श्री वेदप्रकाशजी जैन लिखते हैं: —

मैंने अनेक पत्रिकाएँ पढ़ी हैं परंतु आत्मधर्म पढ़ने से मुझे एक नया रास्ता मिल गया है।

फिरोजाबाद (उ०प्र०) से श्री पांडे ज्ञानेन्द्रकुमारजी जैन लिखते हैं: —

आत्मधर्म का बेचैनी से इंतजार रहता है। इसमें प्रकाशित एक-एक शब्द आत्मा पर अनादिकाल से चढ़े अज्ञानरूपी मैल को काटने के लिये साबुन का काम करता है। इस पत्र ने पुनः समाज में एक चेतना प्रस्तुत कर एवं पिछले लंबे समय से चली आ रही बहुत-सी मूढ़ताओं का लोपकर आत्मार्थी जीवों के ज्ञान-चक्षु खोले हैं। पत्र के अंदर सारगर्भित शाश्वत ज्ञानधारा के प्रवाह के लिये व्यवस्थापक-मंडल साधुवाद का पात्र है।

सरधना (उ०प्र०) श्री हुकमचंदजी जैनी, मंत्री, अ० भा० दि० जैन परिषद् लिखते हैं: —

आपका सम्मानित पत्र आत्मधर्म मेरे पास निरंतर आता है। अन्य लेखों के साथ-साथ संपादकीय में दशधर्म के प्रत्येक अंग पर सरल भाषा में सारगर्भित लेख लगातार पढ़ता आ रहा हूँ। भाषा जनसाधारण के उपयोग की है। लिखने का ढंग बड़ा ही सुंदर, आकर्षक व आधुनिक होने के साथ-साथ प्रत्येक वर्ग के पढ़ने व समझने योग्य है।

सागर (म०प्र०) से श्री मन्नूलालजी जैन एडवोकेट लिखते हैं: —

आत्मधर्म बहुत ही उत्तम निकल रहा है। पूज्य गुरुदेव की वाणी के प्रसार में भारिल्लजी का सहयोग सराहनीय है।

ग्वालियर (म०प्र०) से श्री धनपतलालजी जैन एडवोकेट लिखते हैं: —

आत्मधर्म पत्रिका पढ़ी। बड़ी अच्छी एवं ज्ञानवर्धक लगी।

भोपाल (म०प्र०) से श्री फूलचंदजी गोयल लिखते हैं: —

श्री भारिल्लजी के संपादकत्व में निश्चय ही पत्रिका का स्वरूप सरल, हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक हुआ है।

आत्मार्थी छात्रों को अपूर्व अवसर

आत्मार्थी छात्र डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के सान्निध्य में रहकर चारों अनुयोगों के माध्यम से जैन धर्म का सैद्धांतिक अध्ययन कर सकें तथा साथ ही संस्कृत, न्याय, व्याकरण आदि विषयों का आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर सकें—इस उद्देश्य के फलस्वरूप टोडरमल स्मारक भवन में २४ जुलाई १९७७ से टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय विधिवत् प्रारंभ हो चुका है। अभी २६ आत्मार्थी छात्र अध्ययन कर रहे हैं।

इस वर्ष सिर्फ दस छात्रों को नवीन प्रवेश देना है।

उक्त छात्रों को राजस्थान विश्वविद्यालय की जैनदर्शन-शास्त्री एवं जैनदर्शन-आचार्य परीक्षाऐं दिलाई जाती हैं, जो क्रमशः बी०ए० और एम०ए० के बराबर सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हैं।

शास्त्री का कोर्स ३ वर्ष का है। उसके बाद २ वर्ष का कोर्स आचार्य परीक्षा का है। शास्त्री परीक्षा में प्रवेश के लिये वैकल्पिक विषय संस्कृत लेकर हायर सेकेन्डरी में उत्तीर्ण होना आवश्यक है। जिन छात्रों का हायर सेकेन्डरी में वैकल्पिक विषय संस्कृत न होगा उन्हें एक वर्ष का उपाध्याय कोर्स करना होगा जो कि हायर सेकेन्डरी के समकक्ष है।

उपाध्याय परीक्षा में प्रवेश हेतु, किसी भी वैकल्पिक विषय से हाईस्कूल अथवा हायर सेकेन्डरी (कक्षा दसवीं या ग्यारहवीं) की बोर्ड परीक्षा में कम से कम ५० प्रतिशत अंकों से उत्तीर्ण होना आवश्यक है। आवेदन करते समय वैकल्पिक विषयों सहित अपनी शैक्षणिक योग्यता अवश्य लिखें एवं संबंधित अंकसूची भी भेजें।

उक्त परीक्षाओं के अतिरिक्त वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड जयपुर द्वारा संचालित सभी परीक्षाओं में तथा शास्त्री कक्षा के छात्रों को बंगीय संस्कृत शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित न्याय प्रथमा, न्याय मध्यमा और न्यायतीर्थ परीक्षाएँ भी दिलाई जावेंगी।

छात्रों में आध्यात्मिक रुचि उत्पन्न करने हेतु वर्ष में एक या दो बार पूज्य स्वामीजी के सान्निध्य के लाभ हेतु सोनगढ़ ले जाया जायेगा।

टोडरमल स्मारक में ही निरंतर आध्यात्मिक वातावरण प्रदान करने हेतु आदरणीय विद्वद्वर्य पंडित लालचंदभाई मोदी बम्बई, पंडित खीमचंदभाई सोनगढ़, सिद्धांताचार्य पंडित फूलचंद्रजी वाराणसी, पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, पंडित नेमीचंदजी पाटनी आगरा, पंडित नरेन्द्रकुमारजी भिसीकर शोलापुर, पंडित रतनचंदजी भारिल्ल विदिशा आदि का सान्निध्य प्राप्त होगा। डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल तो यहाँ हैं ही।

इसप्रकार पूरा-पूरा आध्यात्मिक वातावरण मिलेगा।

आवास एवं भोजन की सुविधा निःशुल्क रहेगी।

आगामी सत्र जुलाई १९७९ से प्रारंभ होगा। प्रवेशार्थी शीघ्र ही प्रार्थना-पत्र प्रेषित करें। यदि उन्हें प्रवेश योग्य समझा गया तो उन्हें ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण-शिविर में साक्षात्कार हेतु बुलाया जायेगा।

— मंत्री, पंडित टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय

ए-४-, बापूनगर, जयपुर-३०२००१

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में

पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण	साधारण :	४-००
	सजिल्द :	५-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४